श्री हिन्दी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय ग्रन्थांक—१०

श्री चतुर्विंशति-जिन-स्तुतिः

श्रीसुन्दरस्तुतयः

संपादक

मुनि—विनयसागर

श्रीहिन्दीजैनागम प्रकाशक सुमतिकार्यालय ग्रन्थांक—३०

अर्हं ।

विद्यावारिधि-श्रीसुन्दरगणि-प्रणीत-स्वोपज्ञ-
वृत्त्यासह—यमकालंकारविभूषिता—

श्रीचतुर्विंशति-जिन-स्तुतिः ।

हिन्दी आगमोद्धारक खरतरगच्छाधिराज—श्रीमज्जिन-
मणिसागरसूरीश्वराणां शिष्यरत्न—मुनि-
विनयसागरेण संशोधिता—

कोटा उपधान सत्क ज्ञान द्रव्य साहाय्येन

वीर सं० २४७१] [वि० २००४

प्रकाशक:—

श्रीहिन्दीजैनागमप्रकाशक सुमतिकार्यालय
जैन प्रेस
कोटा (राजपूताना)

प्रथमावृत्तिः २५०

।)

मुद्रक:—
जैन प्रेस,
कोटा.

विश्व के सभी सभ्य समाजों में अपने से अधिक गुणवान, विद्यावान्, वयोवृद्ध के प्रति आदर एवं भक्तिभाव रहा करता है, और उनकी अविद्यमानता में—तिरोहित हो जाने पर उनके स्मारक के रूप में मंदिर, मूर्ति-पादुका, चित्र आदि का निर्माण होता है जिससे शिल्प स्थापत्य मूर्तिकला चित्रकला का विकाश एवं उत्तरोत्तर अभिवृद्धि व उन्नति हुई, और उनके गुणानुवाद के रूप में चरित काव्यों, भक्ति साहित्य-स्तुति स्तोत्रादि विशाल साहित्य का निर्माण हुआ। कोइ भी वस्तु उत्पत्ति के समय साधारण रूप में होती है पर विशिष्ट व्यक्तियों के हाथों में जाकर कलापूर्ण एवं असाधारण रूप में परिवर्तित हो जाती है। मंदिर मूर्तियों के पीछे श्रीमानों एवं कुशल कलाकारों के सहयोग से अरबों खरबों द्रव्य या असंख्य धनराशि का व्यय हुआ है। समय समय के राज्य विप्लव एवं प्राकृतिक प्रलयों से ध्वस्त होते होते जो सामग्री बच पाइ है या खुदाइ से प्राप्त हुई है, उससे उपर्युक्त कथन पूर्णरूपेण समर्थित है। इसी प्रकार असाधारण प्रतिभासंपन्न विद्वानों के भक्तिसिक्त हृदयों से जो उद्‌गार निकले वे साहित्य की छटा से पूर्ण, विविध छंद अलंकारों से सज्जित, शृंगार, दर्शन, अध्यात्म से सराबोर, विविध शैली की असंख्य उदात्त रचनाओं के रूप से आज भी सुरक्षित है।

स्तोत्र साहित्य की प्राचीनता एवं जैनेतर स्तोत्र

भारतीय साहित्य में सब से प्राचीन ग्रन्थ वेद माने जाते हैं, उनके अवलोकन से तत्कालीन लोक मानस के भक्तिभाव का झुकाव, इन्द्र, वरुण,

अग्नि, सूर्य आदि की स्तुति रूप ऋचाओं में पाया जाता है, परवर्त्ती साहित्य में क्रमशः बहुत से नवीन देवों की कल्पना बढ़ती गई और उनके स्तुति स्तोत्र विपुल परिमाण में बनने लगे। रामायण, महाभारत भागवतादि विशालकाय चरित ग्रन्थ भी इसी भक्तिवाद के विकाश की देन है। रघुवंश, कुमारसंभव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध आदि काव्य ग्रन्थों में भी प्रसंगवश कृष्ण, महादेव, चंडी आदि की स्तुति की गई है, पुराणों के जमाने में तांत्रिक प्रभाव बढ़ता चला, फलतः शिवकवच, शिवरक्षा, विष्णुपंजर आदि संज्ञक रचनायें उपलब्ध होती हैं। इसी प्रकार अष्टोतर शत, सहस्र नामवाले स्तोत्रों का एवं दुर्गासप्तशती, चंडी, दुर्गा, सरस्वती आदि के स्तव सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध है, जिसमें शिवमहिम्न, चंडीशतक, सूर्यशतक, देवीशतकादि एवं शंकराचार्य के स्तोत्र बहुत प्रसिद्ध * हैं। बौद्ध साहित्य में भी विद्वता पूर्ण अनेक स्तोत्रों की उपलब्धि होती है। इन सब स्तोत्रों का परिमाण विशाल होने पर भी जैन स्तोत्र साहित्य, भारतीय स्तोत्र साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कइ दृष्टिकोण से उनका वैशिष्ट्य असाधारण प्रतीत होता है पर उस पर विस्तृत विवेचन करने का यह स्थान नहीं है।

जैन स्तोत्र साहित्य का विकाश

जैन धर्म में उसके उद्धारक एवं प्रवर्त्तक तीर्थंकरों का आदर होना स्वाभाविक ही है। मूल आगमों में वीरस्तुति अध्ययन एवं अन्य ग्रन्थों में भी तीर्थंकरों की सुन्दर शब्दों में स्तुति की गई है, और देवों द्वारा १०८ पद्यों में स्तुति करने का निर्देश पाया जाता है। मौलिकरूपसे दि० समंतभद्र

---

*—विशेष जानने के लिये देखें, शिवप्रसाद भट्टाचार्य के 'प्राचीन भारत का स्तोत्र साहित्य' लेख के आधार से लिखित भक्तामर-कल्याण-मंदिर-नमिऊण की प्रो० हीरालाल कापडिया लिखित प्रस्तावना एवं शोभनकृत स्तुति चतुर्विंशतिका की भूमिका।

एवं श्वे. में सिद्धसेन आद्य स्तुतिकार माने जाते हैं। समंतभद्र के देवागम स्तोत्र, स्वयंभूस्तोत्र एवं जिन शतक, और सिद्धसेन की द्वात्रिंशिकायें और कल्याणमंदिर बड़े ही गंभीर एवं भावपूर्ण स्तोत्र हैं। देवागम एवं द्वात्रिंशिकाओं में दर्शनशास्त्र कूट कूट के भरा है। इसके पश्चात् मानतुंगसूरि कृत भक्तामरस्तोत्र, शोभनमुनि रचित स्तुति चतुर्विंशतिका, धनपाल रचित ऋषभ-पंचाशिकादि ११ वीं शताब्दि तक संख्या में कम पर महत्वपूर्ण स्तोत्र निर्मित हुए। १२-१३ वीं शती से स्तोत्र साहित्य की संख्या में जोरों से अभिवृद्धि हुई, जो अब तक चालु है। लेख विस्तार के भय से यहां उनका विवेचन नहीं किया जा रहा है*। स्तुति स्तोत्र छोटे छोटे होने के कारण इनकी संग्रह प्रतियें लिखी जाने लगी, पर फुटकर पत्रों की रक्षा की ओर उदासीनता रहने आदि के कारण हजारों स्तोत्र नष्ट हो चुके है; फिर भी हजारों की संख्या में उपलब्ध विशिष्ट स्तोत्रों से जैन स्तोत्र साहित्य का महत्व भली भांति जाना जा सकता है।

जैन स्तोत्रों का प्रकाशन

कुछ वर्ष हुए यशोविजय ग्रन्थमाला ने इसके प्रकाशन की ओर कुछ ध्यान दिया, और दो भागों में कई सुन्दर स्तोत्र प्रकाशित किये। श्रेयस्कर-मंडल म्हेसाणा ने भी कुछ स्तोत्र प्रकाशित किये, पर सब से अधिक श्रेय मुनि चतुरविजयजी को हैं, जिन्होंने 'जैन स्तोत्र संदोह' नामक बृहदाकार ग्रन्थ के २ भाग प्रकाशित किये. एवं अंत में समस्त स्तोत्रों की सूची प्रकाशित की। आपने जैन पत्र में लेखमाला भी प्रकाशित की थी। स्तोत्रों को सटीक विस्तृत विवेचन सह प्रकाशन × करने का कार्य देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फंड की ओर से प्रो॰ हीरालाल कापडिया ने किया। भीमसी माणेक ने भी प्रकरण

---

*-विस्तार के लिये देखें, हीरालाल कापडिये की भक्तामरादि स्तोत्र त्रय की प्रस्तावना. एवं शोभन चतुर्विंशतिका की भूमिका।

×-प्रकाशित ग्रन्थ-१-२-३ शोभन, बप्पभट्टि. मेरुविजय रचित स्तुति-चतुर्विंशतिका, ४-धनपाल कृत ऋषभ पंचाशिका. ५.- भक्तामरादि

रत्नाकर में बहुत से स्तोत्रों को प्रकाशित किया. एवं अन्य फुटकर संग्रह ग्रन्थों में कई स्तोत्र प्रकाशित हुए, फिर भी स्तोत्र साहित्य * की विशालता को देखते हुए ऐसे प्रयत्न अभी और होते रहने आवश्यक हैं। मुनि-विनयसागरजी ने इस ओर ध्यान देकर एक आवश्यकता की पूर्ति करना प्रारंभ किया है. यह सराहनीय है।

खरतरगच्छीय स्तोत्र साहित्य

जैन स्तोत्र साहित्य की श्री वृद्धि करने में खरतरगच्छाचार्यों एवं विद्वानों की सेवा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। १२ वीं शती से इसका प्रारंभ अभयदेवसूरिजी से होता है। देवभद्राचार्यजी के भी कई स्तोत्र प्रकाशित हैं पर जिनवल्लभसूरिजी एवं जिनदत्तसूरिजी ही इस शती के उल्लेखनीय स्तोत्र रचयिता हैं। जिनवल्लभसूरिजी प्रकांड विद्वान थे, उनके विद्वतापूर्ण एवं विशाल स्तोत्रों से परवर्त्ती विद्वानों को काफी प्रेरणा मिली है। आपके अधिकांश स्तोत्र प्राकृत में है। २४ तीर्थंकरों के अलग २ स्तवन रूप चौवीसी एवं पंचतीर्थी स्तव, ५ कल्याणक स्तवन सर्वप्रथम आपके ही उपलब्ध हैं। उल्लासि. भावारिवारण. दुरियर स्तोत्रादि आपके विशेष प्रसिद्ध हैं. इन पर कई टीकायें भी प्राप्त हैं। जिनदत्तसूरिजी के स्तोत्र बडे चमत्कारी माने जाते हैं और सप्तस्मरणादि

स्तोत्रत्रयम्, ६-७-भक्तामरपादपूर्ति काव्यसंग्रह भा. १-२। ८-जैन धर्म वर स्तोत्रादि

४-ऊपर केवल प्राकृत-संस्कृत स्तोत्रों की ही चर्चा की गई है। गुजराती. राजस्थानी. हिन्दी आदि में रचित स्तुति साहित्य बहुत ही विशाल है। साराभाई प्रकाशित स्तवन मंजूषा में ११५१ स्तवन और चौवीसी वीसी संग्रह. आनन्दघन. यशोविजय. ज्ञानविमलसूरि. देवचन्द्र आदि के स्तवन संग्रह में हजारों स्तवन प्रकाशित हैं, अप्रकाशित तो असंख्य हैं। मराठी. बंगला. पारशी. सिन्धी भाषा में भी स्तवन पाये जाते हैं।

में ३ स्तोत्र तो नित्य पाठ किये जाते हैं। १३ वीं शती में मणिधारी जिनचन्द्रसूरि. जिनपतिसूरि. पूर्णभद्र गणि. जिनेश्वरसूरि (द्वि०) के स्तोत्र उपलब्ध हैं। १४ वीं शती के पूर्वार्द्ध में जिनरत्नसूरि. उ० अभयतिलक. देवमूर्त्ति. जिनचन्द्रसूरि (तृ०) एवं उत्तरार्द्ध में जिनकुशलसूरि. जिनप्रभसूरि, तरुणप्रभसूरि. उ.लब्धिनिधान. जिनपद्मसूरि राजशेखराचार्य आदि स्तोत्रकार हुए, जिनमें जिनप्रभसूरि समस्त जैन स्तोत्रकारों में शिरोमणि हैं। कहा जाता है कि प्रतिदिन नूतन स्तोत्र बनाये बिना आप आहार ग्रहण नहीं करते थे. फलतः ७०० स्तोत्रों की रचना हो गई, पर अभी तो आपके ७०स्तोत्र ही उपलब्ध है। आपके रचित स्तोत्र यमक-श्लेष.चित्र. छंदादि विविध विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। १५ वीं शताब्दि में जिनलब्धिसूरि. लोकहिताचार्य. *भुवनहिताचार्य उ०विनयप्रभ. मेरुनन्दन,जिनराजसूरि, जिनभद्रसूरि. उ०जयसागर. नयकुंजर, कीर्त्तिरत्नसूरि आदि, १६ वीं में क्षेमराज. शिवसुन्दर. साधुसोम, गजसार आदि, १७ वीं में जिनचन्द्रसूरि उ० समयराज, सूरचन्द्र. पद्मराज. उ० समयसुन्दर. उ०गुणविनय. सहजकीर्त्ति. श्रीवल्लभ आदि, एवं १८ वीं में धर्मवर्द्धन, ज्ञानतिलक, लक्ष्मीवल्लभ. और १९ वीं में रामविजय. क्षमाकल्याण आदि स्तोत्रकारों के स्तोत्र उपलब्ध हैं। खरतरगच्छीय स्तोत्रों की कई सुन्दर संग्रह× प्रतियें भी प्राप्त हुई हैं जिनका संग्रह ग्रन्थ प्रकाशन होना परमावश्यक है।

---

*—इनकी 'जिन स्तुतिः' संग्राम नामक दंडकमयी वाचनाचार्य पद्मराज गणिरचित वृत्ति के साथ मुनि विनयसागरजी ने 'स्वोपज्ञवृत्ति सहित-भावारिवारण पादपूर्त्ति—पार्श्वजिनस्तोत्रं एवं जिनस्तुतिः सटीका' में प्रकाशित करदी है।

×—दो हमारे संग्रह में, २ बड़े ज्ञान भंडार में २ जेसलमेर पंचायती ज्ञानभंडार में, १ विजयधर्मसूरि ज्ञानमन्दिर आगरे में है। जिनभद्रसूरि स्वाध्याय पुस्तिका अभी मिली नहीं, कई प्रतियें त्रुटित प्राप्त है। पाटण आदि में भी ऐसी प्रतियें अवश्य होंगी।

स्तुतिकार श्रीसुन्दर

प्रस्तुत " चतुर्विंशति जिन-स्तुतिः" के रचयिता कवि श्रीसुन्दरगणि सम्राट अकबर प्रतिबोधक खरतरगच्छाचार्य यु० श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के शिष्य हर्षविमल के शिष्य थे* । हमने अपने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह (पृ० ६०। ६३) में इनके रचित जिनचन्द्रसूरिजी के गीतद्वय प्रकाशित किये थे, एवं अपने यु० जिनचन्द्रसूरि ग्रन्थ के पृष्ठ १७२ में आपके रचित अगडदत्त प्रबन्ध = का उल्लेख किया था। जैन धातु प्रतिमा लेख-संग्रह भा० २ ले० ३२२ में प्रकाशित सं० १६६१ के मार्गशीर्ष कृष्णा ५ के लेख को आपने लिखा था। इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १३४ में श्रीसुन्दर रचित विमलाचल स्तवन गा० ६ (सं० १६५६ माधव सुदि २ संघ सह यु० जिनचन्द्रसूरिजी की यात्रा के उल्लेख वाला) का भी निर्देश किया गया था। हमारे संग्रह में एवं बीकानेर के अन्य भंडारों में आपके अन्य कई गीत प्राप्त होते हैं जिनकी सूचि नीचे दी जा रही है —

---

*—यद्यपि स्तुति चतुर्विंशतिका में श्रीसुन्दर के गुरु का नाम नहीं पर प्रति लेखक श्रीवल्लभ गणि १७ वीं शती के सुप्रसिद्ध खरतरगच्छीय विद्वान हैं एवं अन्य कइ बातों पर विचार करने पर हमारी राय में ये हर्षविमल के शिष्य ही संभव हैं।

सुन्दर नंदी पर विचार करने पर आपकी दीक्षा सं० १६३५ के लगभग संभव है और जन्म सं० १६२५ । इनके गुरु हर्षविमलजी का नाम सं० १६२८ के पत्र में आता है। और नंदी अनुक्रम से भी उनकी दीक्षा सं० १६१७-२० के लगभग संभव है।

=—इसकी ६ पत्रों की प्रति हमारे संग्रह में है। सं० १६६६ के कार्तिक ११ शनिवार को भाणवड में शाह चांपसी, पूजा, मंत्रि रढिया सुश्रावक के आग्रह से इसकी रचना की गई है। उत्तराध्ययन सूत्र के द्रव्य भाव जागरण के अधिकार से २८५ पद्यों में यह रचना हुई है।

१-इरियावही मिच्छामि दुक्कडं विचार गर्भित स्तवन गा. १४ (आदि-चउवीसमा जिनराय०)
२-पार्श्व स्तवन गा० ५ (आदि-पुरसोदय प्रधान ध्यान तुमारडो०)
३-नेमी गीत गा. ६ (,,—सामलिया सुन्दर देहा०)
४ आदीश्वर गीत गा. ६ (,,—नयर विनीता-राजीयउजी०)
५-नेमि राजुल गीत गा. ८ (,,—जोड २ बहिनी हियइ विचारी नइ०)
६-वैरागी गीत गा. ६ (,,—चेतन चेतइ जीउ चित्त मइ०)
७ दसवैकालिक गीत गा.६ (,,—चतुर्विधसंघ सुणउ हितकारक०)
८-जिनचन्द्रसूरि गीत गा.५ (,,—सुणउ रे सुहागण को कहइ०)
९- ,, ,, .७ (,,—अमृत वचनपूज्य देखणा०)
१० ,, ,, .६ (,,—तुम्हारे वांदिवउ मुझ मन भायउ०)
११- ,, ,, .५ (,,—श्रीखरतरगच्छ गुणनिलउ०)
१२-जिनसिंहसूरिजी गीत गा. ३ (आदि—जिनसिंघसूरि जगमोहण०)
१३- ,, ,, ५ (,,—रंगलागउजी मोहि जिनसिंघसूरि०)

स्तुति चतुर्विंशतिका की प्रस्तुत शैली की अन्य रचनायें

प्रस्तुत 'स्तुति चतुर्विंशतिका' यमकालंकार विभूषित विद्वतापूर्ण कृति है, इसमें द्वितीय चरण की पुनरावृत्ति चतुर्थपाद*में भिन्नार्थ के रूप में की गई है, यमकालंकार का इसमें अखंड साम्राज्य है, एवं शार्दूल विक्रीडित-स्रग्धरा आदि १३ छंदों में×स्तुति की गई है। देववंदन भाष्य के अनुसार प्रत्येक स्तुति

—*नं० १४-१५में प्रथम तृतीयपाद समानता रूप एव नं० २३ वी स्तुति में भिन्न प्रकार का यमकालंकार भी है।

—×शार्दूल विक्रीडित में नं० १. १२. १६. २२, उपेंद्रवज्रा २. ६, शालिनी ३, १९, द्रुत विलंबित ४. १०. १४, स्रग्विणी ५, वसंततिलका ६, मालिनी ७. १७, मंदाक्रांता ८, हरिणी ११, पृथ्वी १३. २०, अनुष्टुब् १५, शिखरिणी १८. २१. स्रग्धरा २३. २४, वीं जिन स्तुतियें हैं। इससे स्तुतिकार का संस्कृत भाषा छंद एवं अलंकारों की विद्वता और

के चार पद्यों में से प्रथम में विवक्षित किसी एक तीर्थंकर की स्तुति, दूसरे में सर्वजिनों की स्तुति, तृतीय में जिनप्रवचन और चौथे में शासन सेवक देवों का स्मरण किया गया है। ऐसी यमकालंकार चतुर्विंशतिकाओं में सर्व प्रथम रचना आचार्य बप्पभट्टसूरिजी की है, इसके पश्चात शोभनमुनिजी की सर्व श्रेष्ठ होने से बहुत ही प्रसिद्ध है। इसकी प्रेरणा से रचित इनके अनंतर मेरुविजयकी जिनानंदस्तुति चतुर्विंशतिका, ४-यशोविजय उपाध्याय की ऐन्द्र-स्तुति चतुर्विंशतिका ५.-हेमविजय रचित (अप्रकाशित) और एक अज्ञात कर्तृक (दिशुसुख मरिवल-आदिपद वाली तीर्थंकरों की ही प्राप्त) प्रकाशित है। अभी तक यमकालंकार ९६ पद्य वाली ५ रचनायें ही ज्ञात थी * प्रस्तुत कृति के प्रकाशन द्वारा इसकी संख्या में अभिवृद्धि होती है। स्तुतिकार ने स्वोपज्ञ वृत्ति द्वारा भावों को स्पष्ट कर दिया है। इसकी एक मात्र प्रति=**मुनि-विनयसागरजी** को प्राप्त हुइ थी अतः इसके प्रकाशन के लिये मुनि श्री को धन्यवाद देते हुवे भूमिका समाप्त की जाती है।

अगरचन्द नाहटा

आषाढ़ पूर्णिमा -२००४

बीकानेर

उस पर अधिकार असाधारण सिद्ध होता है।

*—पद्य २७ से ३६ की अन्य यमकालंकारमयी स्तुति चतुर्विंशतिकाओं के लिये देखें ऐन्द्र स्तुति की प्रस्तावना।

=-प्रति के लेखक श्रीवल्लभ स्वयं बडे विद्वान ग्रन्थकार थे, आपकी अर-नाथ स्तुति भी विद्वतापूर्ण कृति है, जिसके प्रकाशन का भी मुनि विनयसागरजी विचार कर रहे हैं। श्रीवल्लभ के अन्य ग्रंथो के संबंध में जैन सत्यप्रकाश वर्ष ७ अंक ५ में प्रकाशित मेरा लेख देखना चाहिये।

शुद्धाशुद्धिपत्रकम् ।

अशुद्धिः	शुद्धिः	पृष्ठ	पंक्ति
क्रमां	क्रमा	१	११
संद्धीकरोऽमोदितो	सद्धीकराऽऽमोदितो	१	१७
श्रियो	श्रियः	२	१०
ऽया	अया	२	२६
जितोरुदिशं	जितोरूदिशं	३	१६
यच्छन्	यच्छद्	४	१३
दे वीतारा हार सारा धिका रा	दे वीताराऽऽहारसाराऽधिकाऽऽरा	४	१५
आसा	आशा	४	१७
इह	इह	५	११
जिवरान्	जिनवरान्	५	१२
सुमत्याह्न	सुमत्याह्न	६	१०
ईदाना	ददाना	७	२
नुतास्तां	नुताऽस्ता	७	२२
संया	साया	८	६
दितछिनः	दितोछिनो	२३	१५
रोगसमः	रोगशमः	२३	१७
धरतील	धरतीति	२३	२३
सौरभी	सैरिभी	२४	१५
यन्	यत्	२५	६
कारमाका	का रमाः काः	२५	७
उपांत्यर्च्या	त्रपां तार्च्या	२६	५
दानेभ्योहिता निकामं	दानेभ्यो हिताऽनिकामं	२७	१५
परिभवंतु	परिभवं तु	२८	५

अशुद्धि	शुद्धिः	पृष्ठ	पंक्ति
बलम्	मलम्	२८	८
यन्ति	यान्ति	२८	२१
दमितामानमला	दमिता मानमायामला	२६	२
मकलं	मकरं	२६	१३
वरं तारकां	करं तारकं	३०	४
समरस्तेन	समरसस्तेन	३३	१५
रामा	रामाभावाः	३३	२३
नु कामं	तु कामं	३५	२

ॐ अर्हं नमः ।

महाकवि पंडित श्रीसुन्दर-गणि-प्रणीता-
स्वोपज्ञ-वृत्त्या च सुशोभिता-

श्रीचतुर्विंशतिजिन स्तुतिः ।

श्री युगादिदेव स्तुतिः ।

(शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्)

नित्यानन्दमयं स्तुवे तमनघं श्रीनाभिभूतुं जिनं,
विश्वेशं कलयामलं पर-महं मोदात्तमस्तापदम् ।
नित्यं सुन्दर भाव भावितधियो ध्यायन्ति यं योगिनो,
विश्वेऽशंकलयामलं परमहं मोदात्त-मस्तापदम् ॥ १ ॥

ते यच्छन्तु जिनेश्वराः शिवसुखं त्रैलोक्यवंद्यक्रमां,
ये भव्यक्रमहारिणोऽसमयशोभावर्द्धनाः कामदाः ।
तन्वाना नवमङ्गलान्य-नवमाः श्रीसंघलोके सदा-
ये भव्यक्रमहारिणोऽसमयशो मा वर्द्धनाः कामदाः ॥ २ ॥

श्रीसार्व्वप्रभवा भवस्य विभवद्भावारिभेदे भृशं,
गी-र्वाणप्रखराऽसतां प्रतनुतामत्यन्तकामासुहृत् ।
पापव्यापहरा धुताऽधिनिकरा संद्धीकराऽमोदितो—
द्गीर्वाणप्रखरा सतां प्रतनुतामत्यन्तकाऽमासुहृत् ॥ ३ ॥

देयाच्छं श्रुतदेवता भगवती सा हंसयानासना,

नालीकालयशालिनीतिकलि तापाऽयाऽपहारक्षमा ।
धत्ते पुस्तक-मुत्तमं निजकरे या गौरदेहा सदा,
नाऽलीकालयशालिनीतिऽकलितापायापहारक्षमा ॥ ४ ॥

व्याख्या—अहं तं नाभिसूनुं जिनं स्तुवे। किंभूतं ? नित्यो यः आनन्द-स्तन्मयं अनघं-पापहीनं विश्वेशं-विश्वस्वामिनं कलं-यामं-यमसमूहं लाति ददातीति, तं रा ला दाने। परं-प्रकृष्टं मोदात्-हर्षात्। पुनः किंभूतं ? तमस्तापदं-तमसः पापस्य तापं ददातीति तं। तं कं ? यत्पदोर्नित्यः सम्बन्धः, विश्वे सर्व्वेयोगिनो, यं नित्यं ध्यायन्ति। किंभूतं ? अशंकलयामलं-अशंकः-शंकारहितो यो लयो ध्यानविशेषस्तेनामलं-निर्मलं। पराः प्रकृष्टा महायस्मात्तं। मया श्रिया उदात्तं अस्तापदं-अस्ता आपदो येन तं। किंभूताः ? सुन्दरभावभावितधियो—सुन्दर भावेन भाविता धीर्येषां ते ॥ १ ॥

ते जिनेश्वराः शिवसुखं यच्छन्तु-दिशंतु। त्रैलोक्येन वंद्याः क्रमा येषां ते। ते के ? ये भव्यक्रमहारिणो-भव्याचारमनोज्ञाः। यशश्च भा च यशोभे असमे च ते यशो मे च असमयशोभे ते वर्द्धयन्तीति। कामदाः—वांछितदाः। पुनः किंभूता ? श्रीसंघलोके-मंगलानि तन्वानाः। किंभूताः ? पतनरहिताः। किंभूते ? सदाये सत् प्रधान आयो-लाभो यस्य तस्मिन्। किंभूताः ? भव्यक्रमहारिणो भविनां अक्रमं अनाचारं हरन्तीति। पुनः किंभूताः ? असमयशोभावर्द्धनाः-परमतशोभाच्छेदकाः-कन्दर्प्पच्छेदकाः ॥ २ ॥

गीर्व्वाणी सतां-भवस्य प्रतनुतां-कृशत्वं प्रतनुतां विस्तारयतु। किंभूता ? भावारिभेदे-भाविवैरिविनाशे बाणप्रखरा-बाणातीक्ष्णा। अत्यन्तकामा-अत्यन्तकामानां असुहृत्-अमित्ररूपा। आमोदितोद्गीर्व्वाणप्रखरा-आमोदितोद्गीर्वाणा चासौप्रखरा-प्रकर्षेण खं सुखं राति-दत्ते इति। 'खमिंद्रियस्वर्गशून्यम्' इत्येकाक्षरामिधानात्। पुनः किंभूता ? असतां अत्यन्तका-अतिक्रान्तयमा अमासुहृत् रोगप्राणहारिणी ॥ ३ ॥

सा श्रुतदेवता शं देयात् सदासना। किंभूता ? नालीकालयशालिनी-नालीकं कमलं तस्याऽऽलयेन शोभमाना। पुनः किंभूता ? ईतिं कलिं तापंऽया-

अश्रीः, तेषां अपहारे क्षमा समर्था । सदाना-दानसहिता । पुनः किंभूता ? अलीकालयशा-अलीकं-असत्यं अलयोऽपध्यानं श्यति-छिनत्ति । नीत्या कलिता । अपायापहा-विघ्नहर्त्री अरं अत्यर्थं क्षमा यस्याः । "नानुस्वरविसर्गौ तु, चित्रभंगायसंमतौ ॥ ४ ॥

श्री अजितजिन स्तुतिः ।

(उपेन्द्रवज्रावृत्तम्)

जिताऽरिजातं नमतां हरन्तं, स्मराऽजितं मानव मोहरागम् ।
जयत्यलं यो यशसो-ज्वलेन, स्मराऽजितं माऽनवमो हरागं ।
जिना जयं ते त्रिजगन्नमस्या, दिशन्तु मे शंसितपुण्यमेदाः ।
यद्वाग् विधत्तेऽत्र नरं जितोरु, दिशं तु मेशं सितपुण्यभे-दाः ।
जिनागमानन्दितसत्त्व स त्वं, दिशाऽनि शं कल्पित कंदलालम् ।
कृपालता येन कृता त्वयाऽम-दिशाऽनिशं कल्पितकंदलाऽलम्
पविं दधानाच्छविभाविताशं, साऽमानसी मा भवता-सताशा ।
या स्तूयतेऽलं सुदृशा विशा सत्, सा मानसीमाऽमवताचताशा ।

व्याख्या—हे मानव ! अजितं जिनं स्मर । मोहरागं हरन्तं, जितारेः सुतं स्मरेण अजितं स्वयशसा हरागं कैलासं जयति । किंभूतः ? मानवमः मया श्रियाऽनवमो रम्यः ॥ १ ॥

ते जिना जयं दिशंतु । मे मह्यं शंसिताः कथिताः पुण्यभेदायैस्ते । यद्वाग् येषां वाणी नरं, मेशं-लक्ष्मीशं विधत्ते । तु पुनः जितोरुदिशं विधत्ते जिता ऊर्व्यो दिशो येन तं । किंभूता वाग् सितपुण्यभा-सिता उज्वला पुण्या पवित्रा भा यस्याः । किंभूताः ? ईदाः- श्रीदाः ॥ २ ॥

हे जिनागम ! स त्वं मे-मह्यं शं सुखं दिश देहि । किंभूतं अनि न विद्यते इः कामो यत्र तत् । कल्पितः छेदितः कंदलस्य कलहस्य आलः उपक्रमो येन तत् । येन त्वया कृपालताऽलं भृशं कल्पितकंदला निर्मितकंदाकृता । किंभूतेन

आप्तदिशा आप्ता दिशो येन् सर्व्वदिक् ख्यातत्वात् ॥ ३ ॥

सा मानसी मां अवतात् रक्षतु, किंभूता तताशा विस्तीर्णवांछा या सुदृशा विशा सम्यग्दृशा मानवेन स्तूयते । कीदृशेन अमवता ज्ञानवता, किंभूता सत्सा प्रधानश्रीः । मानसीमा अहं कृतेः सीमा मर्यादा । पुनः किंभूता आत्तताशा-आत्ता गृहीता-ता यैस्ते आत्तताः शत्रवस्तान् अश्नाति भक्षयति या ॥४॥

श्री संभवजिन स्तुतिः ।

(शालिनी वृत्तम्)

वन्दे देवं संभवं भावतस्तं, सेनाजातं योजिताशं सदालम् ।
बाह्याबाह्यं विद्विषां चाजयद्वे, सेनाजातं यो जिताशं सदालं ।
सल्लोकं तेऽवंतु तत्त्वेऽतिसत्त्वाः, सर्वज्ञा-लीनं-दिताशाविचित्राः
स्तौत्यानंदाद्यानमानप्रमाणान्, सर्वज्ञालीनंदिताशाविचित्राः
सद्यो-वद्यं हंतु हृद्यार्थ सार्थः, सिद्धान्तोयं सज्जनानामपारः ।
बुद्धिं यच्छन् कुड्मलध्वंसने सन्, सिद्धांतोयं सज्जनानामपा-रः
दद्यान्मोदं शृंखला वज्रपूर्वा, देवी तारा हार सारा-धिकारा ।
पद्मे वासं संदधाना सदानं, दे-वीतारा हारसारा धिका रा ॥४॥

व्याख्या—सेनादेवी सुतं संभवं अहं वन्दे । किंभूतं योजिताशं योजिता आसायेन तं, सदाऽलं सदुपक्रमं यो भगवान् बाह्यं चाऽतरंगं सेनाजातं सैन्यवृन्दं अजयत् । जिताशं सदा अलं भृशम् ॥ १ ॥

ते सर्व्वज्ञाः सल्लोकं अवंतु । किंभूतं लोकं तत्त्वे लीनं अतिसत्वाः बहु-साहसाः दिताशाः छिन्नतृष्णाः पंचवर्णाः । ते के-यान् सर्वज्ञाली सर्व्वविद्वत् श्रेणी स्तौति । किंभूता नंदिताशा हर्षितदिक् । किंभूतं विशिष्टं विज्ञानं त्रायंते इति विचित्राः ॥ २ ॥

अयं सिद्धान्तः सज्जनानां अवद्यं पापं हन्तु । मनोज्ञार्थसमूहः न विद्यते

पारो यस्य सः । किंकुर्वन् सिद्धां प्रसिद्धां बुद्धिं यच्छन् । किंभूतं क्रोधमलध्वंसने-तोयं नीरं । किंभूतः सजाश्च ते नानामाश्च रोगाः ते सज्जनानामास्तेभ्यः पां रक्षां राति ददातीति सः सज्जनानामपारः ॥ ३ ॥

वज्रशृंखला मोदं दद्यात् । तारा उज्वला हारेण सारोऽधिकारो यस्याः सा हारसाराधिकारा । किंभूता पद्मे वासं संदधाना । किंभूते सदानंदे सन् प्रधान आनन्दो यत्र तस्मिन् । वीतारा गतवैरिव्रजा आहारश्च सा च आहारसे । ते च राति ददाति या । अधिका उत्कृष्टा आरा दीप्ति र्यस्याः सा ॥ ४ ॥

श्री अभिनन्दनजिन स्तुतिः ।

(द्रुतविलंबितछन्दः)

तमभिनन्दनमानमतामलं, विशदसंवरजं तुदितापदम् ।
य इह धर्म्मविधिं विभुरभ्यधा-द्विशदसंवर-जंतु-दितापदम् ।१।
जिनवरानवराग निवारकान्, नमततानवभावलयानरम् ।
श्रितशिवं रचयंति हि ये द्रुतं, नमतता नवभावलया-नरम् ।२।
शममयः समयो विलसन्नयो, भवतुदे वनरोचित सत्पदः ।
तव जिनेश कुवादि मदापहो, भवतु देवनरोचितसत्पदः ॥३॥
सशरचापकरा किल रोहिणी, जयति जातमहा भयहारिणी ।
गवि गता सततं विगलन्मनो-ज यति जात महाभय हारिणी ४

व्याख्या—तं अभिनन्दनं आनम । विशदश्चासौ संवरो नृपस्तस्माज्जातं । तुदिता व्यथिता आपदो येन तं । विशत् असंवराणां जन्तूनां दितानि खंडितानि अपदानि उत्सूत्राणि येन तं ॥ १ ॥

तान् जिनवरान् नमत । किंभूतान् अवभावलयान् अवभावे रक्षाभावे लयो येषां ते तान् । अरं भृशं ये जिना नरं श्रितशिवं रचयन्ति । किंभूताः—नमतता नमता न वल्लभा ता श्री येषां ते सारंभत्वात् । नवभावलया नवं भावलयं भामंडलं येषां ते ॥ २ ॥

हे जिनेश ! तव समयो भवतुदे, संसार स्फेटनाय भवतु । किंभूतः देवनरयोः उचितानि शक्र चक्रित्वादीनि संति प्रधानानि पदानि यत्र सः । पुनः किंभूतः अवनरोचित-सत्पदः-अवनेन रक्षया रोचितानि शोभितानि संति, विद्यमानानि पदानि यत्र सः ॥ ३ ॥

जाता महा यस्याः सा जातमहा, अभयदानेन शोभमाना, पुनः किंभूता विगलन् मनोजः कामो येषां ते विगलन्मनोजाः विगलन्मनोजाश्च ते यतयश्च विगलन्मनोजयतयस्तेषां जातः समूहस्तस्य महाभयं हरतीति ॥ ४ ॥

श्रीसुमतिजिन स्तुतिः ।

(स्रग्विणी छन्दः)

श्रीसुमत्याह्वमीशं प्रभूतश्रियं,
तं स्मरामो हितं मानसेऽनारतम् ।
यं नमस्यन्ति देवाः शिवाहार्विभा–
तं स्मरामोहितं मानसेनारतम् ॥ १ ॥

सार्व्ववारं चिरं ध्यायतोऽध्यानहं,
मानवा धामलं सज्जयामोदितम् ।
यं जुषंते हरंतं सतां योगिनो,
मानबाधामलं सज्जयामो दितम् ॥ २ ॥

सिद्धविद्याधरैः संस्तुतः सोस्तु नः
श्रीकृतांतोऽभवायाऽमहाविक्रमः ।
यः प्रदत्ते सतामीहितं नाशिता,
श्रीकृतांतो भवायामहा विक्रमः ॥ ३ ॥

दुष्टरक्ष क्षमा संदधाना गदां,

सास्तु काली वराया-मरालीकला ।
भाति यत्कीर्त्ति रुच्चैर्ददाना समाः,
सा-स्तु कालीवरायामरालीकला ॥ ४ ॥

तं सुमतिं वयं अनारतं निरन्तरं मानसे चित्ते स्मरामः । किंभूतं स्मरेण अमोहितं । पुनः किंभूतं कल्याणदिनप्रभातं मानस्य सेनायां अरतं अनासक्तं ॥१॥

हे मानवाः ! सार्व्ववारं सर्वज्ञसमूहं ध्यायत । किंभूतं धामं तेजो लाति ददातीति तं । किंभूतं -सज्जयेन प्रधानजयेन आमोदितं हर्षितं । किंभूतं सतां मानबाधामलं हरंतं । सज्जयामोदितं सज्जे यामे व्रतसमूहे उदितं उदयं प्राप्तम् २

स श्रीकृतांत: सिद्धान्तः अभवाय मोक्षायास्तु । नोऽस्माकं किंभूतः आ सामस्त्येन महान् विक्रमो यस्य सः । पुनः किंभूतः नाशितौ अश्रीकृतांतौ दारिद्रयमौ येन स । भवस्य आयामं विस्तारं हन्तीति । पुनः किंभूतः विक्रमः विशिष्टः क्रमः आचारो यस्य सः ॥ ३ ॥

सा काली देवता वराय अस्तु भूयात् । किंभूता अमराली कला अमराल्याः देवश्रेणेः कं सुखं लाति ददातीति । यत्कीर्तिर्यस्याः कीर्त्ति र्भाति । किंभूता समाः समस्ताः साः श्रियो ददाना । वर आयो लाभो यस्याः सा वराया । पुनः किंभूता कालीवरईश्वरः आ सामस्त्येन या लक्ष्मीः मराली राजहंसी तद्वन् मनोहरा ॥ ४ ॥

श्री पद्मप्रभजिन स्तुतिः ।

(वसंततिलका छन्दः)

पाद्मप्रभी भवतु मूर्तिरियं मुदे मे,
या पद्मरागविभया रुचिरा-जितेना ।
श्रेयांसि या च तनुते विनता-नुता स्तां,
यापद्मरा गविभयारुचिराऽजितेना ॥ १ ॥
सा जैनपद्धति-रनुद्धत बुद्धिरस्यात्,

काल कलंकविकला मुदितप्रभावा ।
या संस्तुता सुखचयं तनुते च दीर्घ-
कालं कलं कविकला मुदितप्रभावा ॥ २ ॥
श्रीमज्जिनेश ! शिवदा गदितार्थसार्था,
गौ रातु शं सितमहा भवतोऽसमोहा ।
प्रोत्तारयेच्छ्रितजनानिह यानवद्या,
गौरा तु शंसित महाभवतोऽसमोहा ॥ ३ ॥
गांधारि पातु भवती नवती रिताका,
सं-या महारि हरिणी नयनादरामा ।
पाण्योः सुवज्रमुशले दधती द्विरूपे,
सायाम हारिहरिणी नयना-दरा-मा ॥ ४ ॥

व्याख्या—पद्मराग विभया पद्मराग कांत्या रुचिरा । अतएव जितेना जितसूर्यारक्तत्वात् सा मूर्तिः श्रेयांसि तनुते । विनता प्रणता नुता स्तुता च सती । किंभूता अस्तायापद्मरा अया अश्रीः आपत् कष्टं मरो मरणं एतानि अस्तानि निरस्तानि यया सा । अस्तायापद्मरा अजिता अपराभूता इना स्वामिनी ॥ १ ॥

सा जैनपद्धतिः जिनश्रेणिः कालं अस्यात् क्षिपतु । किंभूता अनुद्धता बुद्धिर्यस्याः सा । किंभूता कलंकरहिता पुनः किंभूता हर्षितातिशया या स्तुता । सुखसमूहं विस्तारयतीति । दीर्घकालं मोक्षलक्षणं च । अपरं कविकलां तनुते । कलं मनोज्ञं उदयवतीं प्रभां अवतीति उदित प्रभावा ॥ २ ॥

हे जिनेश ! भवतस्तव गौर्वाणी शं सुखं रातु ददातु । किंभूता सितमहा सिता उज्वला महा उत्सवाः यस्याः सा । किंभूता असमोहा नसमोहा असमोहा हेशंसित ! हे स्तुत ! या गौः महाभवतः महासंसारात् श्रितजनान् प्रोत्तारयेत् यानवत् पोतवत । गौरा उज्वला । किंभूता असमोहा असमा ऊहा वितर्का यस्याः

सा ॥ ३ ॥

हे गांधारि ! सा भवनी पातु । इनवती स्वामिवती । ईरितं कंपितं अर्क-दुःखं यया-सा । किंभूता महारिहारिणी महतः अरीन् हरतीति । पुनः किंभूता नयमादरामा न्यायशब्दमनोहरा । किंभूता सायामहारिहरिणीनयना सह आयामेन वर्त्तेते ये , ते सायामे , सायामे च ते हारिणी च सायामहारिणी हरिणी नयने इव नयने यस्याः सा । अदरा भयरहिता । मा मां कर्म्मतापकम् ॥ ४॥

श्री सुपार्श्वजिन स्तुतिः ।

(मालिनी छन्दः)

हरतु दुरितहन्ता श्रीसुपार्श्वः स पापं ,
शमयति मम तापं कार्यमालाभहृद्यः ।
इह महदविनाशं यस्य भक्त्या जनो वै ,
श-मयति ममतापंकाऽर्यमाऽलाभहृद्यः ॥ १ ॥

जयति जिनवगालीसामलालातिकाला ,
जनयति कृतकामा यामदाना गतारा ।
कृतकलिमलनाशं संस्मृता या विशां प्राक् ,
अन-यति कृतकाऽमायाम-दा नागतारा ॥ २ ॥

निहत सकलवन्द्रं श्रीजिनेन्द्रागमं भो !,
मह तमिह तमोदं सुप्रभावंचिंतामम् ।
परम वरवचोभिर्नित्यशो दुर्जनाना-
महत-मिहतमोदं सुप्रभावं चितामम् ॥ ३ ॥

दिशतु सुखमुदारं श्रीमहामानसी ! मे ,
पर-मतिशयसाराऽसारदानाऽसमाना ।

रुचिरुचिभृताश्मा पाणिना शं दधाना,
पर मतिशयसारा सारदाना समाना ॥ ४ ॥

व्याख्या-स श्रीसुपार्श्वः पापं हरतु । मम यः तापं शमयति । किं लक्षणः कार्यमालाभहृदः कार्ये च मा च कार्यमे तयोर्लाभेन हृद्यः यस्य भक्त्या जनः शं सुखं श्रयति गच्छति । किंभूतं ममतापंकार्यमा ममतापंके तृष्णा कर्दमे ऽर्यमा सूर्यः अलाभं हानिं हरतीति ॥ १ ॥

अमलआलः उद्यमो यस्याः सा । जनानां यतीनां च कृतः कामोऽभिलाषो यया सा । यामदाना यामस्य व्रतसमूहस्य दानं यस्याः सा । गतारागतं आरं अरिवृन्दं यस्याः सा । सा का? गौ विशां मानवानां कृतकलिमलनाशं जनयति रचयति स्मृता । किंभूता कृतकामायासदा कृतकाश्च ते अमाश्च कृतकामास्तेषां आयामं विस्तारं द्यति खंडयति या सा । पुनः किंभूता नागनागपद्मवत्सारा उज्ज्वला नागः । सर्प्पगजेपद्मे चेत्यनेकार्थः ॥ २ ॥

भो भव्य ! इह तं श्रीजिनेन्द्रागमं मह पूजय । कीदृशं तमोदं पापच्छेदकं सुप्रभावंचितामं सुप्रभया सुकांत्या, वंचिता अमा रोगा येन तं । दुर्जनानां परमवरवचोभिः । अहतं अक्षतं ईहतमोदं ए: कामस्य हतो मोदो येन स तं । सुप्रभावं चितामं चितं स्फीतं अमं ज्ञानं यत्र तं ॥ ३ ॥

श्री महामानसी ! मे मह्यं परं प्रकृष्टं सुखं दिशतु । कीदृशी अतिशयसारा अतिशयेन साः श्रीः राति दत्ते या सा । आसारदाना आसारो वेगवान् वर्षः तद्दानं यस्याः सा । असमाना गुरुतरा परौ च तौ मतिशयौ च परमतिशयौ ताभ्यां सारा रुचिरा । सारदाना सारदायाः आत्मा प्राणरूपा सज्जीवान् समाना साहंकारा ॥ ४ ॥

श्री चन्द्रप्रभजिन स्तुतिः ।

(मन्दाक्रान्ता छन्दः)

देवं चन्द्रप्रभजिन-मिमं चन्द्रगौरांगभासं,
मन्दे मायासह-मह-महो ! राजिताशं तमीशम् ।

कीर्त्या योऽलं जयति जगदानंदकंदोऽमदेऽत्रा-
मन्देऽमायासहमहमहोराजिताशं तमीशम् ॥१॥
सार्वव्यूहो वितरतु परं विश्वविश्वप्रशस्यः,
शं वो भव्या! लयदमकरो दक्षमालोपकारी।
कामारिं यो हृतमद-मलं भाववैर्यद्रिभेदे-
शंबोऽभव्यालयद-मकरो-दक्षमालोपकारी ॥ २ ॥
श्रीसिद्धान्तो धृतघनरसः सिन्धुवत्पूरिताशः,
स्तादस्ताघः सुरचितमहा जीवनोदी नतारः।
योऽर्थं धत्ते किल बहु महावी वभाढ्यं तथाघ-
स्ता-दस्ताघः सुरचितमहाजीवनोदीनतारः ॥३॥
पायाद्दिव्यांकुशपविधरा सिन्धुरारूढदेहा,
सायाऽलीलामुदितहृदयानीतिमत्तापराशा।
वज्रांकुश्याश्रितसुखकरा हेमगौरस्ताविघ्ना,
सा यालीलामुदितहृदयानीतिमत्तापराशा ॥४॥

व्याख्या—अहो! इति सम्बोधने। अहं तं देवं चन्द्रप्रभं मन्दे स्तुवे। किंभूतं मायासहं राजिताशं रेण कामेनाऽजिता आशा वाञ्छा यस्य तं। तं ईशं यः कीर्त्यातमीशं चन्द्रं जयति। भवं अमन्दे प्रचुरे। किं लक्षणं अमायासह-महमहोराजिताशं अमो-रोगः आयासः खेदः तौ हन्तीति अमयासहा महा उत्स-वाः महस्तेजस्ताभ्यां राजिता आशा दिशो येन सः। पश्चात् कर्मधारयः ॥१॥

हे भव्याः! सार्वव्यूहो जिनगणो वो युष्मभ्यं शं वितरतु। किंलक्षणः लयदमकरः लयश्च दमश्च तौ करोतीति। दक्षमालाया विद्वच्छ्रेणेः उपकारी यः। कामारिं कामवैरिणं हृतमदं अकरोत्। भाववैरिण एवाद्रयस्तेषां भेदे शंबः पविः। पुनः किंभूतः अक्षमालोपकारी अक्षमा लोपकर्ता। अभव्यं आलयं नरकाद्यं ददा-

तीति तं । कामारे विशेषणं ॥ २ ॥

श्रीसिद्धान्तः पूरिताशः स्तात् । अस्ताघः अस्तानि अघानि पापानि येन सः । सुरंश्चितं व्याप्तं महस्तेजो यस्य सः । जीवान नोदयति प्रेरयति धर्मविधौ स जीवनोदी । न तं आरं यस्मात् स नतारः थः, बहुं अर्थं धत्ते । किंलक्षणः अहावी मार विकार रहितः तथा वधाख्यं जंतुं अधस्तान् नरकादिषु धत्ते । अस्ताघः अगाधः । पुनः किंभूतः सुरञ्चितमहाजीवनः सुष्ठु रञ्चितं महाजीवनं रक्षा येन सः । अवीननारः नवीनतां राति ददातीति । सिन्धुपक्षे सुरञ्चितो देवव्याप्तो महाजीवनोदी महाजीवप्रेरकः ननारः श्याम इति यः । महावीवधाख्यं महाभारादवं अधस्तात् धत्ते । महाजीवनं जलं नवीनः अवीनः तां श्रियं रातीति अवीनतारः । कर्म्मधारयः ॥ ३ ॥

सा वज्रांकुशी पायात् । नीत्यामत्ता पराशा परान् शत्रून् अश्नातीति । मह आयेन लाभेन वर्त्तते या सा साया । पुनः किंभूता आलीडा मुदितहृत् आलीनां सखीनां ईडा स्तुतिः तस्या या मुदः हर्षाः, तत्र इतं गतं हृद् हृदयं यस्याः सा । पुनः किंभूता अयानीतिमत्तापराशा अया अश्रीः अनीतिमान् अन्यायवान् तयोस्तापरा तापदात्री आशा यस्याः सा ॥ ४ ॥

श्रीसुविधिजिन स्तुतिः ।

(उपेन्द्रवज्रा छन्दः)

समाधिलीनः सुविधिर्जिनेशः,
पायात् सदा नोऽमदनोदितश्रीः ।
कर्पूरगौरांग विराजमानो—
पायात्सदानो मदनोदित श्रीः ॥ १ ॥

जिनव्रजःस्ताद्भव मीतिहन्ता,
विज्ञा नरो ! बोधिकरो रमारः ।
यत्सेवयास्यादखिलेष्टलाभो,

विज्ञानरो बोधिकरो रमारः ॥ २ ॥

आप्तागमोऽयं भवताद्विभूत्यै।

विदारिताशो हतभावरोगः।

जिनेन यो वै जगदे त्रिकाल,

विदारिताशोऽहतभावरोगः ॥ ३ ॥

भूयात् मुदे मे ज्वलनायुधा सा,

विभातिसोमासमसाहसाऽरम्।

सुरीषु याऽलं च वचः सुधावत्,

विभाति सोमाऽसमसाऽह सारम् ॥ ४ ॥

व्याख्या—सुविधिः सदा नोऽस्मान् पायात्। अमदनः अमितश्रीः अखंड लक्ष्मीः अपायात् विघ्नात् मदस्यनोदिता स्फेटिता श्रीः शोभा येन ॥ १ ॥

हेनरः! हे पुरुषाः! जिनव्रजः वो युष्माकं बोधिकरः स्तात् भवतु। किंलक्षणः अधिकरोरमारः अधिकरं रोरं दारिद्र्यं मारयतीति। विज्ञानरः विशिष्ट ज्ञानेन क्षीप्रः रमारः रमां राति ददातीति ॥ २ ॥

अयं आप्तागमो विभूत्यै भवतात्। किंलक्षणः विदारिताशः विदारिता आशा तृष्णा येन सः। हता भावरोगा येन स हतभावरोगः। यो जिनेन जगदे त्रिकालविदा त्रीन् कालान् वेत्तीति तेन। किंलक्षणः अरिताशः अरीणां भावोऽरिता तां श्यति विनाशयतीति। अहता या भा कान्तिस्तया वरः। अगः न गच्छतीति अगो निश्चलः ॥ ३ ॥

सा ज्वलनायुधा ज्वालामालिनी मे मुदे भूयात्। विभातिसोमा विभया ऽतिक्रान्तः सोमो यया सा। असमसाहसा। अरं भृशं या सुरीषु अलं विभाति शोभते। चः पुनः या सुधावत् सारं वचः आह ब्रूते। किंलक्षणा सोमा सह उमया कीर्त्या वर्त्तते या सा सोमा। असमसा असमा सा श्री यस्याः सा ॥४॥

श्री शीतलजिन स्तुतिः ।

(द्रुतविलंबितं छन्दः)

स्मरत शीतल-मीशमिहैनसा-
मजयदं चितमोद-मपालयम् ।
स्मररिपुं किल यो निलयो श्रिया-
मजयदंचितमोऽदयपालयम् ॥ १ ॥

विरचयंतु जयं मम कर्म्मणां
जिनवरा गतमोहरणा घनाः ।
सुजन कानन पल्लवने परा-
जि-नवराग तमो हरणा घनाः ॥ २ ॥

तव जिनेश ! मतं विगतैनसां,
समयते हृदयं ममकामितम् ।
निहत संतमसं वितरतु सतां,
समय ते हृदयंगम ! कामितम् ॥ ३ ॥

विजयते सततं भुवि मानवी,
प्रवरदा नवमानवगाऽजिता ।
जिन पदांबुरुहे भ्रमरीस्तया,
प्रवर-दानव-मानव-राजिता ॥ ४ ॥

व्याख्या—शीतलं ईशं स्मरत । किंलक्षणं एनसां पापानां अजयदं चितमोदं व्याप्तमोदं अपालयं अपगतः आलयो ध्यानं यस्य । यः स्मररिपुं कन्दर्पं अजयत् जिगाय । किंलक्षणः यः अंचितमः अंचिता पूजिता मा लक्ष्मीर्यस्य । किंलक्षणं स्मररिपुं अदयपालयं अदयपा अविरताः त एव आलयो य-

स्य तं ॥ १ ॥

जिनवरा ! मम कर्म्मणां जयं विरचयन्तु । गतमोहरणा गतौ मोह रणौ येषां ते । घना निश्चलाः परश्चासौ आजिः पराजिः पराजिश्च नवरागश्च तमश्च पराजिनवरागतमांसि, तानि ह्रियंते यैस्ते । घना मेघाः ॥ २ ॥

हे जिनेश ! नव मतं विगततमसां गतपापानां हृदयं समयते प्राप्नोति । गमककामितं । हे हृदयंगम ! सतां कामितं वांछितं वितरत् ददत् ॥ ३ ॥

मानवी भुवि विजयते । किंलक्षणा प्रवरदा प्रकृष्टं वरं ददातीति । नवमानवरा नवेन मानेन वरा प्रधाना । अजिता प्रवरा ये दानव– मानवाः तयो मध्ये विशेषेण राजिता ॥ ४ ॥

श्री श्रेयांसजिन स्तुतिः ।

(हरिणी छन्दः)

अतिशयवरं श्रीश्रेयांसं जिनं वृजिनापहं,
अमितममलं भा-मा-गेहं महामि तमंचितम् ।
यमिहमुदिता ध्यायंतीन्द्रादयोऽपि दिवानिशं,
अमित-ममलंभामागेहं महामित-मंचितम् ॥१॥

जिनगणमिमं वन्दे भक्त्या गुणैः प्रवरैरलं–
कृत-मह-मपायासं सज्जातमोद-मदाकणम् ।
चरणमचरत्तीव्रं योत्र स्तुतो जगदीश्वरैः,
कृतमह-मपायासं सज्जातमो दम दारुणम् ॥२॥

जिनमत-मदो वन्दे यच्छत् सदाच्छविराजितं,
विदितकमनं ताभोगं वारिताश्रमरीतिदम् ।
वितरति पदं सद्भ्यो यद्वै सुरासुर संस्तुतं,
विदितक-मनन्ताऽभोगं वाऽरिताश्र-मरीतिदम्

विश्रतु महाकाली सौख्यं स्रपान् दधती गुरून्,
परमशुभदाऽहीनाकारा यतीहितराजिता ।
परघविफलाक्षालीघण्टाधरानमरोनता,
परमशुभदा हीनाकाराऽऽयतीहितराऽजिता ॥४॥

व्याख्या — अहं तं श्रीश्रेयांसं महामि पूजयामि । शमितमं प्रकृष्टः शमीशमितमस्तं । भामागेहं भा कान्तिः मा श्रीःतयो गेहं अंचितं पूजितं । शमितं शान्तं । अमलंभामागेहं भामस्य कोपस्य अगेहं अस्थानं महामितं महैः उत्सवैरऽमितं अंचितं अं परं ब्रह्म तेन चितं व्याप्तं । अं परब्रह्मणि इत्यनेकार्थः ॥ १ ॥

अहं जिनगणं इमं वन्दे । गुणैः प्रवरैः अलंकृतं अपत्यासं अपगतखेदं सज्जातमोदं सत् प्रधानो जातो मोदो यस्य तं । अदारुणं सौम्यं यच्चरणं चारित्रं अचरत् । कृतमहं कृतोत्सवं यथास्यात् । अपायासं अपायान् विघ्नान् अस्यति यत् तत् । सज्जातमः सज्जं अतमः पुण्यं यत्र तत् । दमेन इन्द्रियदमेन दारुणं ॥ २ ॥

अहं अदो जिनमतं वन्दे । विचितः खंडितः कमनः कामो येन तत् विचितकमनं । ताभोगं यच्छन् ददत् ताश्चाः श्रियो भोगं । वारिताशमरीतिदं वारितः अशमः कोपो यया सा वारिताशमा तां रीतिं ददातीति । यत् सद्भ्यः पदं वितरति । विचितकं विख्यातसुखं अनन्ताभोगं अनन्तआभोगो विस्तारो यत्र तत् । वा समुच्चये । अरिताशं वैरितां श्यति छिनत्तीति । अरीतिदं अरीतिं द्यति खंडयतीति ॥ ३ ॥

काली ! सौख्यं वितरतु । परं प्रकृष्टं । अशुभदा अशुभच्छेत्री अहीनाकारा अहीनः सर्पः तद्वत् आकारो यस्याः । यतीहितराजिता यतीनां ईहितेन वांछितेन राजिता परमशुभदा प्रकृष्ट कल्याणदात्री । अकारा कारा गुप्तिगृहं तेन रहिता । आयतीहितरा आयती उत्तरकाले ईः श्रीः हितं च से राति दत्ते या सा । अजिता ॥ ४ ॥

श्रीवासुपूज्य जिन स्तुतिः ।

(शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्)

श्रीमच्छ्रीवसुपूज्यराजतनय श्रीवासुपूज्य प्रभो !,
न त्वा केवलिनं सदार्यमसमं भव्या महं पावनम् ।
विश्वाधीश लभन्ति नोत्तमतमं देवावली सेवितं,
नत्वा के वलिनं मदार्यमसमं भव्यामहं पावनम् ॥ १ ॥

अर्हन्तोद्भुत बोधिबीजजलदा देयासुरवैः समे,
ते तत्त्वानि भृतप्रभावनिकरा विज्ञातमोदानि मे ।
ये विश्वे सुविधीन् ययुः शिवपदं स्वाज्ञारमासञ्जिता-
ते तत्त्वा निभृतप्रभावनिकरा विज्ञातमोदानि मे ॥ २ ॥

वाणी ते जिननाथ ! कल्मषहरा देयादमंदा मुदं,
सद्योगांगदकामला भवपरा भूतिप्रदाऽनाविला ।
या तापं प्रणिहन्ति संतत महोदन्तेमतां निर्वृत्ति,
मद्योगांऽगद कामलाऽभवपरा भूतिप्रदानाऽविला ॥ ३ ॥

देवी शान्तिकृदस्तु मा सुरनरै या स्तूयते नित्यशः,
श्रीशान्ति वैरलामनाऽमरहिता वित्रासिताराऽजरा ।
पाणौ राजति कुण्डिकामृतभृता यस्याः परा निर्मिता-
श्री शान्ति वैरला सनाऽमरहिता वित्रा-सिता-राजरा ॥४॥

व्याख्या—हे श्रीवासुपूज्य ! के नराः पावनं पवित्रं महं-उत्सवं न लभन्ति किन्तु सर्व्वेऽपि । त्वा-त्वां नत्वा प्रणम्य केवलिनं सदार्यमसमं सदा अर्यम्णा सूर्येण समं-तुल्यं भव्यामहं भविनां आमान्-रोगान् हन्तीति । पावनं पाया रक्षाया वनं उद्यानं वलिनं बलसहितं सतां आर्य-स्वामिनम् ॥ १ ॥

ते इमे समे सर्व्वेऽर्हन्तो मे-मह्यं तत्त्वानि देयासुः । किंलक्षणाः भृतप्रभावनिकराः-भृतप्रभावसमूहाः । किंलक्षणानि तत्त्वानि विज्ञातमोदानि-विज्ञातो मोदः पर-

मानन्दो येस्तानि ये विश्वे बुधिर्यान् शोभनाचारान् तत्‌त्वा विस्तार्य श्रियमई ययुः, स्वाशारमायाः सविशान्ते-सवृद्धे निभृतप्रभावनिकराः निभृता निश्चला प्रभा कान्तिर्यस्यामवनौ धरायां तस्याः कं सुखं राति ददति ये ते मुक्तिसुखप्रदा इति भावः। विज्ञातमोदान् विहेभ्योऽतमः पुण्यं ददति ये ते तान् ॥ २ ॥

हे जिननाथ! ते तव वाणी मुदं देयात्। सयस्ताकालं गांगदकांमला गंगाया इदं गांगं दकं नीरं तद्वदमला भवपराभूतिप्रदा भवस्य पराभूतिं पराभवं प्रथति छिनत्ति। अनाविला शुद्धा सन् प्रधानो योगः सद्योगः तस्यांगानि प्राणायामादीनि ददातीति, तस्य सम्बोधनम्। कामला कामं लुनातीति। अभव-परा मोक्षपरा, भूतिप्रदाना भूतेः प्रदानं यस्यां सा। अविला न विद्यते विलं म-रकं यस्यां सा ॥ ३ ॥

वरला हंसी आसनं यस्याः सा। अमरहिता रोगरहिता वित्रासितारा वित्रासितं आरं अरिसमूहो यया सा। अजरा निर्मिता श्री शान्तिः लिर्मिताकृता अभियाः अलक्ष्म्याः शान्ति येया सा। वरला वरं लाति दत्ते या सा। सदा-सना अमरहिता अमरेभ्यो हिता वित्रा विद्वासं त्रायते या सा वित्रा। सिता उज्ज्वला राजरा राजाचन्द्रस्तद्वत् रा दीप्ति र्यस्याः ॥ ४ ॥

श्रीविमल-जिन-स्तुतिः।

(पृथ्वी छन्दः)

जगज्जनितमंगलं कलितकीर्त्तिकोलाहलं,
नवानि विमलं हितं दलितविग्रहं भावतः।
सुखानि वितरत्यलं चरणपंकजं यस्य सत्,
नवानि विमलं हितं दलितविग्रहं भावतः॥ १ ॥
जिना जनितविस्मया जगति विस्फुरत्कीर्त्तिभि—
र्जयंति कलमामलाः श्रमनदीनवादायिनः।
यदंघ्रिवरसेवया सुखयशांसि भव्या जनेऽ—
र्जयन्ति कलमामलाः श्रमनदीनवादा यिनः॥ २ ॥

मतं जिनवरोदितं जयति विस्फुरद् वादिमत्,
सभाऽजित-मलंघनं परमतापहं यामरम् ।
मनोभिलषितां ददत्सुरासुरैर्भक्तितः,
सभाजित-मलं घनं परमतापहं यामरम् ॥ ३ ॥

शरासनवरासिभृज्जयति आत-मोदासदा,
पराऽमरहिताऽऽयता सुरवराजिता रोहिणी ।
विशुद्धसुरभी-महो ! सुरुचिराक्षमालाधरा—
पराऽमरहिताऽऽयता सुरवराजिताऽरोहिणी ॥ ४ ॥

व्याख्या—अहं तं विमलं नवानि स्तवीमि । दलितविग्रहं विकसितशरीरं भावतः शुभभावात् यस्य चरणपंकजं सुखानि नवानि वितरति ददाति । कीदृशं दलितो विग्रहः संग्रामो येन तत् । कीदृशस्य यस्य भावतः कान्तिमतः ॥ १

जिना जयन्ति । किंलक्षणाः कलमामलाः कलां रम्यां मां श्रियं मलंते धारयन्तीति । शमनवीनतादायिनः शमनस्य यमस्य दीनतां ददतीत्येवंशीलाः । भव्याः यत्पादसेवया सुखयशांसि अर्जयन्ति । कलमामलाः कलमः शालिस्तद्वदमलाः शमनवीनतादा शमस्य नवीनतां समुद्रत्वं ददतीति नवीनामिनः नवीनस्तस्य भाव: । यिनः या श्री विद्यते येषां ते यिनः ॥ २ ॥

मतं जिनोक्तं जयति । वादिमत्सभाजितं वादिनां सत्सभयाऽजितं अलंघनं लंघयितुमशक्यं परमतापहं परमं तापं हन्तीति तं । यामं व्रतसमूहं रातीति तं । मनोभीष्टां यां लक्ष्मीं सभाजितं पूजितं अलं भृशं घनं परमतापहं परमते अपहन्तीति । यां श्रियं अरं अत्यर्थं ददत् ॥ ३ ॥

रोहिणी जयति । परा प्रकृष्टा अमरहिता रोगरहिता आयता विस्तीर्णा सुरवराजिता सुरवरैरजिता विशुद्धसुरभीं धेनुं आरोहिणी । अपरा न विद्यन्ते परे शत्रवो यस्याः सा । अमरहिता देवेभ्यो हिता आयता, सुरवराजिता आयो लाभस्ता श्रीः असवः प्राणाः रवः शब्दस्तैः राजिता ॥ ४ ॥

श्रीअनन्त-जिन-स्तुतिः ।

(द्रुतविलंबित छन्दः)

अतनुतापद–मेन–मदारुणं,
जिनमनन्त–मनन्तगुणं भये ।
अतनुता-पदमेन मदारुणं,
य इह-मोह-महो ! विभुरस्मयम् ॥ १ ॥

अशमिनो मतिदानरमाभृतः,
क्षमयता-ज्जिनराजगणः स नः ।
अशमिनोऽमतिदानरमाभृतः,
ममजयञ्च इहात्मरिपून् क्षणात् ॥ २ ॥

अकृतकं दलिताहितसम्पदं,
जिनवरागम-मेन-मुपास्महे ।
अकृत कं दलिताऽऽहितसंपदं,
य इह वादिगणं न मदोज्झितम् ॥ ३ ॥

समरसादितदानवतानवाऽ–
वतु नतान् धृतदीप्तिरिहाच्युता ।
समरसाऽदितदा नवताऽनवा,
सदसि चापकरा हयगामिनी ॥ ४ ॥

व्याख्या—एनं अनन्तं जिनं अहं श्रये सेवे । किंलक्षणं अतनुतापदं अ-तनोः कामस्य तापं ददातीति तं । अदारुणं अरौद्रं सौम्यं एनं कं ? यो विभुर्मोहं । अहो ! इति आश्चर्ये अस्मयं निरहंकारं अननुत अकृत, किंलक्षणं अपदमेनम–दारुणं अपगतो दमो यस्मात् सः अपदमः तस्य इनः स्वामी । मदेन अरुणः मदारुणः अपदमेनश्चासौ मदारुणश्च तं ॥ १ ॥

स जिनराजगणः नोऽस्माकं अशं असुखं शमयतात् । इनः स्वामी किंलक्षणः मतिदानरमाभृतः मतिश्च दानं च रमा च ता बिभर्त्तीति । भून शब्दः स्वरान्तो व्यंजनांतश्च । य इह आत्मरिपून् अन्तरद्विषः समजयत् जिगाय । किंलक्षणान् अशमिनः अशमो विद्यते अशमिनः तान् अमतिदान् । पुनः किंलक्षणान् अरमाभृतः अरमां बिभ्रतीति अरमाभृतः तान् ॥ २ ॥

वयं एनं जिनवरागमं उपास्महे सेवामहे । कीदृशं अकृतकं नकृतकं शाश्वतं दलिताहितसंपदं दलिता खंडिताऽहितानां वैरिणां संपदः श्रियो येन तं । यो जिनागमः कं वादिगणं मदवर्जितं मदरहितं न अकृत न चकार अपितु सर्व्वमपि । कीदृशं तं दलिताहितसंपदं दलिता विकसिता आहिता निश्चलाः संपदः पद विशेषाः यत्र तं ॥ ३ ॥

अच्युता अच्युतादेवी नतान् अवतु । किंलक्षणा समरसाखिदानवतानवासमरंभादिनं खेदिनं दानवानां तानवन्तयो भावो यया सा । समरसा समः सर्धाको रसो यस्याः सा । अदिनता अदिता अखंडिता ता श्री र्यस्याः सा । अनघा पुराणा ॥ ४ ॥

श्रीधर्म्म-जिन-स्तुतिः ।

(अनुष्टुप् छन्दः)

भवतेऽकलितापाय, श्रीधर्म्म ! नमतीह यः ।
भवतेऽकलितापाय ! स नरः पदमव्ययम् ॥ १ ॥
नयेहन्त-मुदागमं, जिनस्तोमं स्मृतिं सदा ।
नयेहन्त मुदागमं, रतः शिश्राय यः शिवम् ॥ २ ॥
भविकन्दर्पहन्तारं, श्रये सिद्धान्त-मेतकम् ।
भुविकं दर्प्पहन्तारं, लभन्ते यजुषो द्विषाम् ॥ ३ ॥
पराभूतिकराऽरीणां, प्रज्ञसी पातु नः समा ।
पराभूति-कसरीणां, दधानाऽसि लतां करे ॥ ४ ॥

व्याख्या—हे श्रीधर्म ! यो नरः भवते तुभ्यं नमति इह । विगतकलाय अकलितापाय कश्चिच्च तापश्च तौ न विद्यते यस्य स अकलितापः तस्मै । हे अकलितापाय ! हे गतविघ्न ! स नरः अव्ययं पदं भवते प्राप्नोति ॥ १ ॥

उदारामं उदारज्ञानं यो मोहं आश्रितवान् । न्यायस्थितः सुखारामं हर्षेण रामं रम्यं ॥ २ ॥

भविनां कन्दर्पं हन्तारं सिद्धान्तं भजे । यच्छ्रुतो भवका भविकं कल्याणं लभन्ते । द्विषां दर्पहं, तारं उज्वलं ॥३ ॥

अरीणां पराभूतिं करोतीति । अरीणां अचीणां जसितलतां दधाना विभाणा ॥ ४ ॥

श्री शान्ति-जिन-स्तुतिः ।

(शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्)

विद्याधीश्वर विश्वसेनतनय स्तुत्वा भवन्तं न के,
शान्ते ! नोदितमार ! तारकलया धाराजनामोदकम् ।
सौख्यं के परमं लभन्ति न बुधाः कामाग्निशान्तौ सदा,
शान्तेनोदितमार ! तारक ! लयाधाराज ! नामोदकम् ॥१॥
अर्हन्तो ददता-ममन्द-मसमानन्दाः सदानन्दनाः,
मोदंते जनितानवप्रशमनादा नाम लाभावराः ।
नुत्वा यानिह कामितासि वशतो विद्वज्जना निर्भरं,
मोदन्ते जनितानव प्रशमना दानामलाभावराः ॥ २ ॥
जीयाज्जन्तुहितं करै जिनवरै-रुक्तोगणेशै धृतः,
सिद्धान्तो दितभावरोगविसरो जन्मप्रमारामकः ।
शुद्धादि विविधार्थ सार्थ रुचिरो सद्धादिदर्प्पापहः,
सिद्धान्तोऽदितभावरो नमि सरोजन्मप्रमारामकः ॥ ३ ॥

दण्डच्छत्रधरोऽवतात् स-ममतः श्रीमच्छान्तिः सतां,
मूर्द्धन्यो वरदामराजितकरो राजावली शोभितः ।
यो जीयन्त इहापरैर्वितरे तुष्टः परायः श्रियो,
मूर्द्धन्यो वरदाऽमराजित करो राजा बलीशोऽमितः ॥ ४ ॥

व्याख्या—हे शान्ते ! हे नोदितमार ! के के बुधाः परमं सौख्यं न लभन्ति ? अपितु सर्वे । भवंतं स्तुत्वा, कीदृशं तारकलया-रम्यकलया, धारा-जनामोदकं-धारा चोर्वी तस्या जनान् आमोदयतीति । पुनः कीदृशं कामाग्नि-शान्तौ नाम इति सत्ये, उदकं नीरं हे शान्तेन ! शान्तानां मुनीनां इन स्वा-मिन् ! हे उचितमार ! उचितां मां श्रियं राति ददातीति । हे नारक ! हे लया-भार ! हे अज ! जन्मरहित ॥ १ ॥

ते अर्हन्तो जिना मोदं ददतां कीदृशाः जनितानवप्रशमनाशाः जनितः अनवः प्रशमस्य नाशो यैस्ते नाम । लाभावरा लाभश्च अवश्च तौ रांति ददति ये । मोदन्ते हर्षन्ते । जनितानवप्रशमनाः जनिर्जन्म तानवं कृशत्वं ते प्रशमयन्ति इति । दानामलाभावराः-दानेन अमला भयावराः प्रधानाः ॥ २ ॥

सिद्धान्तो जीयात् । कीदृशः छितभावरोगविसरः छितश्छिन्नो भावरो-गविसरः समूहो येन सः । पुनः कीदृशः जन्मप्रभारामकः जन्मनां प्रभारः समूहः तत्र अमकः रोगसमः अखितभावरः अखिता अखंडिता या भा कान्तिः तयावरः, भवि पृथिव्यां सरोजन्मप्रभारामकः सरोजन्म कमलं तस्य प्रभावत् रामको रम्यः निर्मला आदि र्यस्य नानार्थसमूहरम्यः परवादिमद स्फेटकः निष्पन्नः अन्तो यस्य ॥ ३ ॥

सतां मूर्द्धन्यो मुकुटः वरेण्यदाम्ना राजितौ करौ यस्य सः । 'यक्षः पुण्य-जनो राजा' इत्यभिधानतः । राजावली-यक्षश्रेणिः तया शोभितः दंडच्छत्रे धर-तीति यः सः । तुष्टः, इह अमूः श्रियो वितरेत् दत्त । कीदृशः वरदश्चासौ अम-रैरजितः अमराजितश्च कं सुखं राति दत्ते यः सः । पश्चात्कर्मधारयः । राजा यक्षाधिपः बलीशः बलिनां प्रभुः अमितः सामस्त्येन ॥ ४ ॥

श्रीकुन्थु-जिन-स्तुतिः

(मालिनी छन्दः)

प्रणमत भवभीतिच्छेदकं कुन्थु-माभा,
जिन-मिन-मितमानं मावधानं दधानम् ।
सुरनरनुतपादं विघ्नदैत्य प्रणाशे,
जिन-मिनमितमानं सावधाऽऽनंदधानम ॥ १ ॥

जिननिचयमुदारं नौमितं प्राप्तपारं,
विशदशम-मपारं भंदमालोपयुक्तम् ।
वचनमिह यदीयं संयमं गाति सद्भ्योऽ—
विशदशम-मपारंभं दमालोपयुक्तम् ॥ २ ॥

वितरतु मतिभारं भेति-भारं जिनानां,
मतमसमऽलयाऽलंकार-मायामतारम् ।
हरति यदिह वेगाद्राति नोवाभिनाना—
मतमसमऽलयालं कारमा यामतारम् ॥ ३ ॥

द्युति-तति निभृताशा सौरभी वाहमं या,
कलयति नादसा शासिता-राति-जाता ।
भवतु मम मुदे सा सर्व्वदोदारदेहा,
कलयति-नर-दत्ताशाऽसि ताराऽतिजाता ॥४॥

व्याख्या—हे जनाः! कुन्थुं जिनं प्रणमत। इनं इतमानं गताहंकारं साव-धानं अप्रमत्तं आभाः कान्ती दधानं जिनं नारायणं अंतरायदैत्यनाशे इनमित-मानं एः कामस्य नमितं मानं प्रमाणं येन स तं। पुनः किंलक्षणं सावधानद-धानं सह अवधेन अहिंसालक्षणेन वर्तते इति सावधः आनन्दस्य धानं पश्चात्

कर्मधारयः ॥ १ ॥

निर्म्मलशमं अपारं गतवैरिममूहं अंदमालोपयुक्तं कल्याणमालासहितं । कीदृशं संयमं अविशत् अशमं अपारंभं गतारंभं दमालोपयुक्तं दमस्य अलोपेन युक्तं ॥ २ ॥

जिनानां मतं कर्तृ । कीदृशं असमो लयोऽलंकारो भूषणं यस्य तत् । आयामेन तारं उज्ज्वलं यत मतं आश्रितानां अलयालं अपध्यानोघमं हरति । कारभाकाः श्रियो न राति न दत्ते किन्तु सर्व्वा अपि । यामतारं यामतां यम-समूहतां राति दत्ते तत ॥ ३ ॥

सा नरदत्तादेवी मम मुदे भवतु । शिक्षित-वैरिवर्गा या महिषीवाहन-मंगीकरोति । कलयतीनां नराणां दत्ताशा । असिना तारा उज्ज्वला अतिजाता कुलीना ॥ ४ ॥

श्री अर जिन स्तुतिः ।

(शिखरिणी छन्दः)

सदारं तीर्थेशं तमिह तमसा-मुत्तमतमं,
महामो हन्तारं विदलित-कला-केलिम-कलम् ।
निहत्योच्चैर्ज्ञानं विशद मभजाघाबलमहो !,
महा-मोहन्तारं विदलितकलाकेलि मकलम् ॥ १ ॥

जिनानं-धाम स्तान् विशदमभजन् ध्यानमिह ये,
सदाहंसारामं कृत-कमल-मानन्दितरसम् ।
जहू राज्यं प्राज्यं सुरनरधृताज्ञो च सहसा
मदाहं साऽरामं कृतकमलमानन्दितरसम् ॥ २ ॥

जिनौकं व्यक्त श्री निचितमनघापेक्षनिपुणं,
मतं पाता-दुर्ध्यान-रम-[illegible] ।

प्रदत्ते यस्सद्भूयः पर-मदहरं हृद्यमनसा,
मतं पाताद्भव्यानरममलमानन्दमवरम् ॥ ३ ॥
सुखं दद्यात् सा मे विशदमिह चक्रायुधधरा-
सुरीत्यक्ताऽश्री-राकृतिसुरचिताऽरातिविभया ।
उपांत्वर्ध्यारूढा नमसि शशिनो या प्रवरया,
सुरीत्यक्ता श्रीरा कृतिसुरचिता राति विभया ॥४॥

व्याख्या—नित्यं अरं जिनं महामः पूजयामः । तमसां हन्तारं विदलित कन्दर्पं । अकलं कलयितुमशक्यं । कीदृशं विदलिता विकशित कलायाः केलि र्यत्र तं अकडं मदरहितं । कडङ्मदे ॥ १ ॥

हंसस्य परमात्मनः आरामं कृतं कमलानां आधारादीनां मानं यत्र तत । राज्यं सारामं श्रीरम्यं कृतकं अलं आनन्दितरसम् ॥ २ ॥

भव्यान् पातात् पतनात् रक्षतु । अरं अमलमानं भव्यानरं भविनां आनान् प्राणान् राति दत्ते यत् । यत् आनन्दं प्रदत्ते । मतं रक्षाप्रदं अमलं आमान् रोगान् लातीति ॥ ३ ॥

चक्रायुधधरा चक्रेश्वरी सुरी मे सुखं दद्यात् । कीदृक् त्यक्ताऽश्रीः त्यक्ताऽलक्ष्मीः आकृतिसुरचिता-अराति विभया आकृत्या सुरचितं निष्पादितं अरातीनां वैरिणां विशिष्टं भयं यया सा । या प्रवरया विभया कान्त्या शशिनश्चन्द्रस्य उपां राति दत्ते । कीदृक् सुरी त्यक्ता सुयुक्तिमहिता श्रीरा लक्ष्मीप्रदा कृतिसुरचिता कृतिभिः सुरैश्चिता व्याप्ता ॥ ४ ॥

श्रीमल्लि-जिन-स्तुतिः ।

(शालिनी छन्दः)

श्रीमल्लिमीडे कलनीलकायं, विभामयं योग विभासमानम् ।
निराकरोन्मोहबलं क्षणेन, विभ्रामयं यो गवि माऽसमानम् ॥१॥
जयन्ति ते ध्वस्ततमोविकारा, विरा-जिना-नोदितमानताराः ।

यजन्ति यानत्र नरामरेशा, विराजिनानोदितमानताराः ॥२॥
जिनेश ! वाक् ते वरनीत्यमे-या↑-देयादमंदानि हितानि कामम् ।
विस्तारयन्ती ददती च विद्या, देया दमन्दानिहितानिकामम् । ३
यक्षाधिपः पातु सहस्तियानो, विभातिरामोऽहितकृत्सुरावः ।
श्रीसंघ रक्षा करणोद्यतो यो, विभाति रामो हितकृत्सुरावः ॥४॥

व्याख्या---श्रीमल्लिं ईडे स्तुवे । विभामयं कांतिमयं योगेन विभासमाने यो मोहबलं निराकरोत्, विभामयं विशेषेण भामस्य कामस्य या श्री येत्र । गवि पृथिव्यां भया रुचाऽसमानम् ॥ १ ॥

ते जिना जयन्ति । कीदृशाः विराः विशिष्टा रा दीप्ति येषां ते । नोदितमानताराः नोदितः स्फेटितो मानो यैस्ते, नोदितमानाश्च ते ताराश्च नोदितमानताराः यान् नरामरेशा यजन्ति । कीदृशाः विराजिनानोदितमाः विराजिनी नानाप्रकारा उदिता मा येषां ते विराजिनानोदितमाः । पुनः किंलक्षणाः नताराः नतं आरं येभ्यस्ते नताराः ॥ २ ॥

हे जिनेश ! ते तव वाक् हितानि देयात् । वरनीत्या मातु-मशक्या । अमंदानि गुरूणि कामं भृशं । कीदृशी दमं विस्तारयन्ती । दानिहिता दानिभ्योहिता निकामं ददती । आनिनां प्राणिनां कामं वांछितं ददती ॥ ३ ॥

स यक्षाधिपः पातु । किंलक्षणः विभातिरामः विभया कान्त्या अतिरामः श्यामः "स्याद्रामः श्यामलः श्यामः" । अहितकृत् रिपुच्छेदकः सुरावः शोभनशब्दः सः कः यो विभाति शोभते रामो रम्यः हितकृत् सुरावः सुरान् अवतीति सुरावः ॥ ४ ॥

श्रीमुनिसुव्रत-जिन-स्तुतिः ।

(पृथ्वी छन्दः)

नमामि मुनिसुव्रतं जिनमिनैर्नुतं विस्मै-
र्जरामरणभेदिनं ऽमितमानबाधापदम् ।

स्मरन्ति जनपावनं भुवननायकं यं हि दु-
र्जरामरणमेदिनं शमितमा नबा-धामदम् ॥ १ ॥
जना निजमनो-हि ये जिनपती-नरं निर्म्मलान्,
नयन्ति सुकृतादरान् विशदकेवलश्रीवरान् ।
भवे परिभवंतु वै विभवदायकाश्रायकान्,
न यन्ति सुकृताऽदरान् विशदके वलश्रीवरान् ॥२॥
जिनेन जननापहं जनित संवर श्रीवरं,
कृतं विकृतिनाशनं दमितमानमायाबलम् ।
मतं वितरदुच्चकैः सह धनेन माभा-च्यलं,
कृतं विकृतिनाऽशनंदमितमान मायामलम् ॥ ३ ॥
स्फुरत्कमलराजिता रचयताच्च गौरी शिवं,
विभूत्तमसमानता सुमतिभूरिताऽराऽदरा ।
करोति हितमत्र या प्रवरगोधिकावाहना,
विभूत्तमसमाऽनताऽसुमति भूरिताराद्रा ॥ ४ ॥

व्याख्या—अहं मुनिसुव्रतं नमामि । कीदृशं जरामरणमेदिनं शमितमा-नबाधामदं-मानश्च बाधा च मदश्च मानबाधामदाः शमिता मानबाधामदा येन तं । तं कं? शमितमाः साधवो यं स्मरन्ति । कीदृशाः? नवाः नवीनाः कीदृशं धामदं तेजोदायकं पुनः कीदृशं दुर्ज्जरामरणमेदिनं दुर्ज्जरो योऽमोरोगः रणः संग्रामः तद्रूपे मे नक्षत्रे दिनं दिवसरूपं ॥ १ ॥

ये जनाः जिनपतीन् निजमनो नयन्ति । कीदृशान् सुकृतादारान पुण्या-दरान् विशदायाः केवलश्रियो वरान्, ते जना भवे संसारे परिभवं न यन्ति न प्राप्नुवन्ति । कीदृशान् सुकृतो निष्पादितोऽदरो मोक्षो यैस्ते तान् । कीदृशी भवे विशदके विशत् अकं दुःखं यत्र । बलं च श्रीश्च ताभ्यां वरान् रम्यान् ॥ २ ॥

हे दमितम ! साधो ! मतं आगमम् । कीदृशं जिनेशकृतं विकृतिमानत्रानं वि-कारहरं क्षमितमानमलं येन तत् । धनेन सह प्रयानं वितरतु । कीदृशेन विकृ-तिना विशेषेण कृतिना कीदृशं आयामलं आयेन लाभेनाऽमलं ॥ ३ ॥

गौरी शिवं रचयतात् । कीदृशी विभूत्तमसमानता विभूत्तमा गजानस्तै नैला । सुमतिभूः इतारा इतं गतं आरं यस्याः, अदरा योऽसुमति प्राणिनि हितं करोति । कीदृग विभूत्तमसमा विशिष्टं यत् भूत्तमं स्वर्णं तन समा । अनता भूरि-ताराद्दरा भूरि स्वर्णौ तारे रूप्ये च आदरो यस्या सा ॥ ४ ॥

श्रीनमि-जिन-स्तुतिः ।

(शिखरिणी वृत्तम्)

नमिं नाथं नानामयभयहरं विश्वविदुरं,
सुदारं मन्देऽहं शमदमकरं तारकमलम् ।
नमन्तीन्द्राः सर्व्वे यमिह सुख हे शुभ ! दक्षा-
सुदारं मन्देहं शमद्-मकलं तारकमलम् ॥ १ ॥

जिनव्यूहं वीहंतमिह तत मोहापहमहं,
भवेऽसंसारेशं सदमरहितं कामदमरम् ।
भविभ्यो यो दत्ते गुरुतरमहो ! सर्व्वविपदां-
भये संसारेशं सदमरहितं कामदमरम् ॥ २ ॥

सुखं दिश्याद्वाणी तव जिनपते ! धौतकलुषा,
क्षमासाराऽकाराऽसरकरसमानो-न्नतिकरा ।
तमस्तोमध्वंसे जन-मनज-बोधेव (सु ?) गुरुणा,
क्षमासाराकारा सरकरसमानोन्नतिकरा ॥ ३ ॥

क्रियात् काली साऽलं कमलनिलया लाभमतुलं,
सुधामाधारा भाजितपरगदा राजितरमा ।

घनश्यामा-यामा वय-चय हरा दारितदरा,
सुधामाधारा भाजितपरगदा राजितरणा ॥ ४ ॥

व्याख्या—अहं नमिं नाथं मन्दे स्तुवे। मुदा हर्षेण अरं भृशं शमदम-वरं तारकां अलं भृशं, कीदृशं उदारं मन्देहं मन्दा ईहा यस्य तं। शमदं शमं ददातीति। अवरं रक्षाप्रदं तारकमलं तारा कमला श्री येस्य तं ॥ १ ॥

अहं जिनव्यूहं श्रये भजे। कीदृशं असंसारेशं असंसारो मोक्षस्तस्य नाथं। सत् अमेरहितं प्रधानदेवानां हितं, कामदमरं कामस्य श्मं राति ददातीति तं। यः संसारेशं दत्ते। कीदृशं सदमरहितं संतो विद्यमाना ये अमारोगास्तै रहितं कामदं अरे ॥ २ ॥

हे जिनपते ! ते तव वाणी सुखं दिश्यात्। कीदृशी क्षमासारा अकारा न विद्यते कारा गुप्तिगृहं यस्यां सा। अखरकरश्चन्द्रस्तत्समाना उन्नतिंकरा उत्प्राबल्येन नतिकरा, तमस्तोमध्वंसखरकरसमा—सूर्यसमा आनानां प्राणाना उन्नतिं कं च सुखं राति दत्ते या सा ॥ ३ ॥

काली लाभं क्रियात्। कीदृशी सुधामाधारा सुधा अमृतं मा श्रीः तयोः धारा भूमि.। कीदृशी भाजितपरगदा भया कान्त्या-जिता परा प्रकृष्टा गदा रोगा यया सा। राजितरणा राजितसंग्रामा सुधामाधारा सुधाम शोभन तेजस्तस्य आधारा, भाजितपरगदा भाजिता परा गदा आयुधविशेषो यस्याः। राजितरणा रो दीप्रः अजितश्च रणः शब्दो यस्याः ॥ ४ ॥

श्री नेमि-जिन-स्तुतिः।

(शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्)

श्रीनेमिं तमहं महामि सहसा राजीमतीं श्रीयुतां,
तत्याजो-र्जितकामरामवपुषं यो गीतरागादराम् ।
भेजे मुक्तिवधूं च यैः कृतनुतिः सद्यादवानामलं,
तत्या-ऽजोऽर्जितकामरामवपुषं योगीतरागाऽदराम् ॥ १ ॥

नित्यं भक्ति जुषे जिनव्रज ! महानन्दं तमात्मालयं,
मह्यं देहि विभोदितं वितमसं सारं समस्ताधिकम् ।
भीति यंत्र न जन्ममृत्युजनिता योगीश्वरैः सर्व्वदा
मह्यं देहिविभो !ऽदितं वितमसंसारं समस्ताधिकम् ॥२॥
प्राणीत्राणपरायणा जिनपते ! ते भारती पातकं,
धीराऽवद्यतु देव ! मे नवरसाऽपारा समाराजिता ।
तापं हन्ति सुधेव या हृतमला भव्यांगनाह्लसद्,
धीराऽवद्यतु देव मेन ! वरसापा रागमाराजिता ॥ ३ ॥
यामा कंदफलावली श्रितकरा सिंहासनाध्यासिनी,
विश्वांबाऽवरताऽऽम्रपादपरमालीना सुतारोचिता ।
विघ्नव्रातहराऽस्तु सा निजगुण श्रेणीभृत-प्रोल्लसद्-
विश्वाम्बा वरताम्रपादपरमाऽऽलीना सुतारो-चिता॥४॥

व्याख्या—यः राजीमतीं तत्याज । कीदृशीं ऊर्जितकामरामवपुषं ऊर्जित काम्नेन रामं वपु र्यस्या स्तां । गीतरागादरां गीतौ प्रसिद्धौ रागादरौ यस्यास्तां । राजी० । किंलक्षणां मुक्तिं इतरागादरां गतरागाचासौ अदरा च निर्भया तां यादवानां तत्या कृतनुतिः अजः जन्मरहितः, कीदृशीं मुक्तिवधूं अर्जितका-मरां अर्जितका चासौ अमरा च मरणरहिता तां अवपुषं अवं तेजः पुष्णा-ति या तां योगी० ॥१॥

हे जिनव्रज ! मह्यं मे तं महानन्दं देहि । आत्मालयं आत्मनः स्थानं कीदृशं विभोदितं विभया उदितं, वितमसं निष्पापं, सारं समस्ताधिकं मह्यं पूज्यं हे देहिविभो ! देहिनां स्वामिन् ! अदितं अखंडितं दितं विशिष्टतो यत्र तं । असंसारं न विद्यते संसारो यत्र तं । समस्ताधिकं सम्यक् अस्तो निराकृतः आधि र्यत्र तं ॥ २ ॥

हे जिनपते ! ते तव भारती पातकं अवद्यतु । हे देव ! मे मम नवरसा

अपारा पाररहिता, गमाराजिता गर्भैः आराजिता शोभिता या तापं हन्ति। कीदृशी धीरा धीप्रदा अवद्यतुन्, पापछेदिनी हे मेन ! मा श्रीः तस्या इनः स्वामी, वरसापा वरां सां श्रियं पाति या सा। रागमाराजिता रागमाराभ्यां अजिता ॥ ३

सांबा अंबिका विघ्नव्रातहराऽस्तु। कीदृशी विश्वाम्बा विश्वमाता अवरता रक्षापरा आम्रपादपरमालीना आम्रवृक्षरमायांलीना सुतारोचिता सुताभ्यां आरोचिता निजगुण शून० विश्वा पृथ्वी वरनाम्रपादपरमा वरौ ताम्रौ यौ पादौ ताभ्यां परमा आलीशा आलीनां सखीनां, स्वामिनी सुनारा उज्ज्वला उचिता ॥ ४ ॥

श्रीपार्श्व-जिन-स्तुतिः।

(स्रग्धरा छन्दः)

विद्याविद्याऽनवद्यः कमनकमनताऽभंगदोऽभंगदोःश्रीः,
कालोऽकालोपकारी करण करणता मोदितामोदितारम्।
दिश्याद्दिश्यात्तकीर्त्ति र्विभवविभवकृत् निर्ममोऽनिर्ममोह-
श्रेयः श्रेयः सपार्श्वः परमपरमताऽऽमोगहा मोगहारी ॥१॥
व्यूहो व्यूहो जिनाना-मुदितमुदितधीभावरोऽभावरोगोऽ-
पायात् पायात्मनामाऽकलितकलितमाः कामदोऽकामदोषः।
मद्योऽमद्योमहृद्योऽसमरसपरमाऽऽनन्दनो नन्दनोकः।
पुण्योपुण्यो नितांतं जनितजनिततेः कल्पनोऽकल्पनोऽलम्।२।
भव्या भव्याऽऽरहीनाऽजननजननता सर्वदा सर्वदावः,
सारा साराऽऽप्तवाणी सुरव सुरवराऽऽनन्दिनी नन्दिनीव।
भव्या भव्याप्तभावाऽनिपुणनिपुणताकृत्तरा कृत्तरागा,
कामं कामं प्रदेयादमित दमितमाऽसातदा सा तदार्त्ती ॥३॥
वित्ता वित्तानि-दत्तेऽसुमतिसुमतिदाराधिताऽऽराधितारा

**सा या मा या विमाया सुकृतसुकृतधीराजिनी राजिनीत्या ।
पातात् पाताद्वरेण्याऽशरणशरणकृद्दानवीदानवीरोत् ;
पद्मा पद्मावती नो निभृतनिभृतताऽहीनभाऽहीनभार्या ॥४॥**

व्याख्या—विद्या विद्याविदो ज्ञानस्य या विद्या नाभ्यां अनवद्यः कमनः कामस्तस्य कमनता-रमणीयता तस्या-भंगदः, अभंगदोः श्रीः-अभंगबाहु लक्ष्मीः कालः कृष्णवर्णः अकालोपकारी-अकं दुःखं तस्य आ सामस्त्येन लोपकारी । पुनः कीदृशः करणं-चारित्रं तस्य करणता-कर्तृत्वं तया मोदितः । मोदितः-मया श्रिया उदितः अरंसपार्श्वः श्रेयो मोक्षं दिश्यात् । उरु श्रेयः गुरुकल्याणं विभव-विभवकृत विभवो मोक्षस्तस्य विभवं करोतीति । निर्ममो निःस्पृहः कीदृशः अनिः निःकामः मम षष्ठ्यन्तं । परमं प्रकृष्टं यत् परमतं तस्य आभोगं विस्तारं हन्तीति भोगहारी सर्पशरीरशोभितः ॥ १ ॥

जिनानां व्यूहः सनाशश्वत् मा-मां अपायात् विघ्नात पायात । कीदृशः व्यूहः विशिष्टऊहो यस्य सः । उदितमुदितधीभावरः अभावरोगः भावरोगरहितः, अकलितकलितमाः-अकलितं क्लेस्तमो येन सः । कामदः अकामदोषः सद्यस्त्-काले असद्योगहृत्, कीदृशः असमरो यः । समरस्तेन आनन्दनः नन्दनोत्कः नन्दनं तत्वचिन्तनं तत्र उत्कः-उत्कंठितः, पुण्योपुण्यः पुण्यस्य ऊः रक्षा तया पुण्यः पवित्रः, जनिजनिततेः कल्पनः-छेदकः, अकल्पनः-कल्पना रहितः, अलं भृशं ॥ २ ॥

आप्तवाणी वो युष्मभ्यं कामं भृशं कामं-वांछितं प्रदेयात् । कीदृशी सत्या सती प्रधाना आरहीना अजननजननता-अजनना-जन्मरहिता ये जनाः अर्थाच्चरम-शरीरिणस्तै नता सर्व्वदा-सदा । सर्व्वदा सर्व्वदात्री । सारा-तत्वरूपा सारा-सांश्रियं राति दत्ते या सा । सुरवा शोभनशब्दा ये सुरवरा-इन्द्रास्तान् आनन्दयतीति । केव ? नंदिनीव कामदुघेव भव्याभव्याप्तभावा-भविभिः संसारिभिराप्ता यस्याः सा, अनिपुणनिपुणताकृत्तरा-अनिपुणानां निपुणताकृत्तरा निपुणताकर्त्री कृत्तरागा-

कृतः क्षिप्तो रागो यया । अमितदमितमासातदा-अमिता ये दमितमाः माधवस्ते-षामसातं दुःखं द्यति-खंडयति या सा तदाश्री ॥ ३ ॥

सा पद्मावती नोऽस्मान् पातात् पतनात् रक्षतु । सा का या आराधिता सेविता सती वित्तानि दत्ते । कीदृग् वित्ता-प्रसिद्धा आराधितारा-आरस्याऽरिसमूहस्य आधितां-राति दत्ते या सा । असुमति-प्राणिनि सुमतिदा माया-सत्प्रभा विमाया सुकृतसुकृतधीराजिनी-सुष्ठुकृता सुकृतधीः पुण्यबुद्धि यया सा । ईराजिनीत्या-राजिनी-ईः-श्रीस्तया राजिनी या नीतिस्तया राजिनी, अशरणाशरणाकृत-दानवस्येयं दानवी दाने-वीरा, उत्पद्मा-उत्कृष्टा पद्मा-श्री र्यस्यां सा । निभृता-भृता निभृतता-निश्चलता यया सा । अहीनभा-अहीना भा यस्याः । अहीनो धरणास्तस्य भार्या एवंविधा ॥ ४ ॥

श्रीवीर-जिन-स्तुतिः ।

(स्रग्धरा छन्दः)

वीरस्वामिन् ! भवन्तं कृतसुकृततर्ति हेमगौरांगभासं,
ये मंदन्ते समानंदितभविकमलं नाथ ! सिद्धार्थजातम् ।
संसारे दुःखपस्मिन् जितरिपुनिकरा संश्रयन्ते घनापा-
येऽमन्दं ते समानं दितभविकम-लं नाथ सिद्धार्थजातम् ॥१॥
ते जैनेन्द्रा वितन्द्रा विहितशुभशता भूतये सन्तु नित्यं,
पादा विस्तारपादा नरकविकलताहारिणो रीतिमन्तः ।
ये ध्याता अंशयन्ती हितसुखकरणाभक्तिभाजां स्फुरत्सत्-
पादा वित्ता स्वादा नर कवि कलता हारिणोऽरीतिमन्तः ॥२॥
पांप-व्यापं हरन्ती प्रकटितसुकृतानेकभावा च सा भू-
यात्के मा मोहहृद्याऽऽचितमतिलपिताऽनंतमौराऽनुकामम् ।

हत्वा क्रोधादि चौरानरिनिकरहरा मुक्तिमार्गप्रकाशं–
चक्रे या मोहहृद्याचित-मतिरुचिताऽनंतगौरातु कामम् ॥३॥
पायान्नो हंसयानामरनिकरनुता सारदा सारदाना,
पद्मालीनादरामा शुभहृदयमता राजिताक्षामदेहा ।
वीणादंडाक्षमाला कजकलितकरा सुंदराचारसारा,
पद्मालीनाऽदराऽपाशुभहृदयमतारा जिताक्षाऽमदेहा ॥ ४ ॥

व्याख्या—हे वीरस्वामिन् ! ये नरा भवंतं मंदंते-स्तुवन्ति । कीदृशं कृतमुकुनतति सुवर्णोज्वलकान्ति । पुनः किंलक्षणं समानन्दितभविकमलं समानंदिता वर्द्धिता भविनां कमला श्री येन तं । हे नाथ ! सिद्धार्थजातं-सिद्धार्थनृपतनयं, ते नराः अस्मिन् संसारे दुःखं न संश्रयन्ते । कीदृशास्ते समानं यथास्यात्तथा, जितरिपुनिकराः, कीदृशं अमंदं, दितभविकं-छिन्नकल्याणं असं भृशं । अथ पुनः सिद्धार्थजातं-सिद्धो निष्पन्नोऽर्थजातो यस्य तं ॥ १ ॥

ते जैनेन्द्राः पादाः भूतये सन्तु । कीदृशाः वित्तारमादाः-वित्ताश्च ते अरमादाश्च प्रसिद्धअलक्ष्मीछेदकाः नरकविकलताहारिणः–नरकेषु या विकलता शून्यता तां हरन्तीति, रीतिमन्तः-रीतियुक्ताः, ते के ये पादाः अंतश्चित्ते ध्याताः सन्तः अरीतिं प्रशमयंति, केषां ? भक्तिभाजां । अरीणां ईतिः प्रचुरता तां । कीदृशाः स्फुरत्सत्पादाः-सत्किरणाः, वित्तारमादाः-वित् ज्ञानं तस्य या तारा मार्गाः तां ददतीत्येवं शीलाः । नरकविकलिताहारिणः-नरेषु कविषु च कलतया रम्यतया शोभमाना ॥ २ ॥

सानन्तगौ जिनवाग् कामं रातु-ददातु । भूचक्रे-धरापीठे, कीदृग् या मोहहृद्या या म ऊहाभ्यां हृद्या आचितमतिः व्याप्तबुद्धिः उचिता-योग्या या मुक्तिमार्गप्रकाशं चक्रे । मोहहृत् याचित-प्रार्थितं अतिरुचिता अनन्तगौरा-शेषवद्गौरा कामं-भृशं ॥ ३ ॥

सारदा नः पायात् । कीदृग् पद्माली–पद्मे र्मा पद्मा पद्मायाः आलीः-

श्रेणि र्यस्याः सा । नादरामा शब्दरम्या शुभहृदयमता-शुभहृदया विद्वांसस्तेषां मता, राजितात्क्षामदेहा-राजितः शोभितोऽक्षामो देहो यस्याः । पद्मालीना-पद्मे-स्थिता अदरा अमाशुभहृत् रोगाऽकल्याणहरा अयमतारा-अमरसंपदा जिता-क्षा-जितेन्द्रिया, अमदेहा-मदरहिता ईहा यस्याः सा ॥ ४ ॥

इति श्रीसुन्दरपंडितप्रकांड श्रीसुन्दरमुनि विरचित-
श्रीमच्चतुर्विंशति-जिनाधिपति-
स्तुति वृत्तिः समाप्ता ॥

लिखिता—पं० श्रीवल्लभगणिना ॥

श्रीः ।

आलेखि-मुनि-विनयसागरेण संशोधिताश्च ।